

ॐ

जैनहितैषी ।

मुख्यतः इतिहास सम्बन्धी लेखोंसे युक्त

विशेष अङ्क ।

❁*❁❁❁

विषयसूची ।

१ पुरातत्त्वकी खोज ...	३८७
२ शान्तिवैभव ...	३९६
३ पद्मनन्दि विनयसेन	४०८
४ भद्रकलंकदेव ...	४२०
५ भा० इतिहासमें जैनमत	४५४
६ जैनसिद्धान्तभास्कर	४६२
७ इतिहास प्रसंग ...	४२०
८ विविध प्रसंग ...	४९१

भाग ११

अंक ७-८

प्रकाशक—

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, गिरगांव-बंबई.

स्त्रियोंके पढ़ने योग्य नई पुस्तकें ।

सदाचार, पातिव्रत, गृहकर्म, शिशुपालन आदिकी शिक्षा देकर सरल भाषामें लिखी हुई स्त्रियोपयोगी पुस्तकोंकी जैनसमाजमें जरूरत है । यह देखकर हमने नीचे लिखी पुस्तकें मँगाकर बिलिए रखी हैं । प्रत्येक स्त्रीको ये पुस्तकें पढ़ना चाहिए । पढ़नेमें जी भी खूब लगता है ।

१ सरस्वती—गृहस्थजीवनका बहुत ही शिक्षाप्रद उपन्यास बड़ा ही दिलचस्प है । मूल्य १) पक्की जिल्दका १।)

२ वीरवधु—चौहानराजा पृथ्वीराज और उसकी वीर रानी संयोगिताका वीररसपूर्ण चरित्र । पाँच बहुत ही सुन्दर चित्र रंगोंसे छपे हुए हैं । मू० ॥)

३ आदर्श परिवार—प्रत्येक कुटुम्बमें पढ़ेजाने योग्य । मू०

४ शान्ता—एक आदर्शस्त्रीका चरित्र । मू० ॥)

५ लक्ष्मी— " " ॥)

६ कन्या-सदाचार—लड़कियोंके कामकी । मू० ॥)

७ कन्यापत्रदर्पण— " " मू० ॥)

८ वनवासिनी—बहुत ही हृदयद्रावक उपन्यास । मू०

९ गृहिणीभूषण—इसकी शिक्षायें बहुतही पवित्र हैं । मू०

मँगानेका पता—

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय, गिरगांव बम्बई



जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।

जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

१ वॉ भाग { वैशाख, ज्येष्ठ, वीर नि० सं० २४४१ । } अंक ७-८

पुरातत्त्वकी खोज करना जैनोंका कर्तव्य है ।

(लेखक:—वेन्सेन्ट ए. स्मिथ, एम्. ए. ।)

पुरातत्त्वसंबंधी खोजकी आवश्यकता ।



जो

विद्यार्थी भारतवर्षसंबंधी किसी विषयका अध्य-
यनकरते हैं वे सब इस बातको न्यूनाधिक
अच्छी तरह जानते हैं कि पुरातत्त्वकी खोजसे
पिछले ७०-८० वर्षमें ज्ञानकी कितनी वृद्धि

हुई है । पुरातत्त्वसंबंधी खोजके अनुसार मौखिक और लिखित कथा-
ओंके प्रमाणकी मर्यादा निश्चित की गई है और इन्हीं अन्वेषणोंकी

सहायतासे मैं प्राचीन भारतका कथामय इतिहास लिखनेको समर्थ हुआ हूँ। बड़ी मेहनतके साथ नियमपूर्वक जमीन खादनेसे जो सिके, शिलालेख, इमारतें, धर्मपुस्तकें, चित्र और बहुत तरहकी मुतफर्रिक बची खुची चीजें मिली हैं उनकी महायत्नासे हमने प्राचीन ग्रंथोंमें लिखे हुए भारतीय इतिहासके टाँचेकी पूर्ति की है, अपने ज्ञानको जो पहले अस्पष्ट था शुद्ध बनाया है और कालक्रमकी मजबूत पद्धतिकी नींव डाली है।

जैनोंके अधिकारमें बड़े बड़े पुस्तकालय (भंडार) हैं जिनकी रक्षा करनेमें वे बड़ा परिश्रम करते हैं। इन पुस्तकालयोंमें बहुमूल्य साहित्य भरा पड़ा है जिसकी खोज अभी बहुत कम हुई है। जैन ग्रंथ खास तौर पर ऐतिहासिक और अध ऐतिहासिक सामग्रियोंपरिपूर्ण हैं। परन्तु साहित्यसंबंधी कथायें बहुधा त्रुटिपूर्ण होती हैं। इस लिए सत्यके निर्णयके लिए पुरातत्त्वसंबंधी खोजकी जरूरत है।

धनाढ्य जैनोंका कर्तव्य ।

दूसरे समाजोंको देखते हुए जैनसमाजमें धनाढ्य मनुष्योंकी संख्या बहुत बढ़ी चढ़ी है और ये लोग किसी तरहके सार्वजनिक काममें, जो उनको वित्ताकर्षक लगता हो, सुभीतेके साथ रुपया खर्च कर सकते हैं। मेरा भाषासंबंधी ज्ञान इतना काफी नहीं है कि मैं साहित्य-ग्रन्थोंकी परीक्षा कर सकूँ अथवा उनका सम्पादन कर सकूँ। अतएव मैं एक और विषयके संबंधमें, जिसका मैं जानकार हूँ, कुछ कहनेका साहस करता हूँ और मैं कुछ ऐसी सम्मतियाँ देता हूँ जिनके अनुसार चलनेसे बहुतसी बहुमूल्य

ताते हाथ लग सकेंगी । मेरी इच्छा है कि जैनसमाजके लोग और विशेष कर धनाढ्य लोग—जो रुपया खर्च कर सकते हैं—पुरा-
तत्वसंबंधी खोजकी ओर ध्यान दें और इस काममें अपने धर्म और
समाजके इतिहासकी ओर विशेष लक्ष्य रखतेहुए धन खर्च करें ।

खोजके लिए गुंजाइश ।

खोजके लिए बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा है । आज कल जैनमतावलम्बी
अधिकतर राजपूताना और पश्चिमी भारतवर्षमें रहते हैं । परन्तु हमेशा
यह बात नहीं रहीं है । प्राचीनकालमें महावीर स्वामीका धर्म आज
कलकी अपेक्षा बहुत दूर दूर फैला हुआ था । एक उदाहरण लीजिए—
जैनधर्मके अनुयायी (पटनाके उत्तर) वैशालीमें और पूर्व बंगालमें आज
कल बहुत कम हैं, परन्तु ईसाकी सातवीं शताब्दीमें इन स्थानोंमें उनकी
संख्या बहुत ज़ियादा थी । मैंने इस बातके बहुतसे सुबूत अपनी आँखोंसे
देखे हैं कि बुंदेलखंडमें मध्यकालमें और विशेषकर ग्यारहवीं और
बारहवीं शताब्दियोंमें जैनधर्मकी विजय—पताका खूब फहरा रही
थी । इस देशमें ऐसे स्थानों पर जैनमूर्तियोंका बाहुल्य है, जहाँ पर
अब एक भी जैनी दिखाई नहीं देता । दक्षिण और तामिल देशोंके
हिंसे अनेक प्रदेशोंमें जैनधर्म सदियों तक एक प्रभावशाली राष्ट्रधर्म
रह चुका है जहाँ अब उसका कोई नाम तक नहीं जानता ।

चन्द्रगुप्त मौर्यके विषयमें प्रचलित कथा ।

जो बातें मैं सरसरी तौर पर लिख चुका हूँ उनमें खोजके
लिए बेहद गुंजाइश है । मैं विशेषकर एक महत्त्वपूर्ण बातकी
खोजके लिए अनुरोध करता हूँ । वह यह है कि महाराज चन्द्र-

गुप्त मौर्य श्रीभद्रबाहुके साथ श्रवणबेलगुल गये, और फि उन्होंने जैनसिद्धांतके अनुसार उपवास करके धीरे धीरे अपां प्राण तज दिये, यह कहाँतक ठीक है। निस्संदेह कुछ पाठक यह जानते होंगे कि इस विषय पर मिस्टर लेविस राइस और डाक्टर फ्लीटमें खूब ही वादविवाद हो चुका है। अब समय आग है कि कोई जैनविद्वान् कदम बढ़ावे और इस विषय पर अपनी दृष्टिसे वादविवाद करे। परन्तु इस कामके लिए एक वास्तविक विद्वान्की आवश्यकता है, जो ज्ञानपूर्वक विवाद करे—ऊँटपटाँग बातोंसे काम नहीं चलेगा। आज कलकी विद्वन्मंडली हरबातके प्रमाण माँगती है और यह चाहती है कि जो बात कही जाय वह ठीक हो और उसके विषयमें जो बहस की जाय वह स्पष्ट और न्याययुक्त हो।

दक्षिणका धार्मिक युद्ध ।

जिन बड़े बड़े प्रदेशोंमें जैनधर्म किसी समय फैला हुआ था बल्कि बड़े जोर पर था वहाँ उसका विध्वंस किन् किन् कारणोंसे हुआ, उनका पता लगाना हमारे लिए सर्वथा योग्य है और यह खोज जैनविद्वानोंके लिए बड़ी मनोरंजक होगी।

इस विषयसे मिलता जुलता एक विषय और है जिसक बहुत थोड़ा अध्ययन किया गया है। वह दक्षिणका धार्मिक युद्ध है और खासकर वह युद्ध है जो चोलवंशीय राजाओंके शैवधर्म और उनके पहलेके राजाओंके जैनधर्ममें हुआ था।

अध्ययनके लिए कुछ पुस्तकें ।

इन बातोंकी अच्छी तरह खोज करनेके लिए हमको पहले जैन स्मारकों, मूर्तियों, और शिलालेखोंका कुछ ज्ञान प्राप्त करलेना चाहिए। बहुतसे ऐसे स्मारक (इमारतें इत्यादि) अब भी ज़मीनके नीचे दबे पड़े हैं और यह ज़रूरत है कि कोई होशियार आदमी उनको खोद कर निकाले। जो कोई जैनोंके महत्त्वपूर्ण भग्नावशेषोंकी जाँच करना चाहे उसको प्राचीन चीनी यात्रियों और विशेषकर ह्यानसाँगकी पुस्तकोंका अध्ययन करना चाहिए। ह्यानसाँगको यात्रियोंका राजा कहनेमें अत्युक्ति न होगी। उसने ईसाकी सातवीं सदीमें यात्रा की थी और बहुतसे जैन स्मारकोंका हाल लिखा, जिनको लोग अब बिल्कुल भूल गये हैं। ह्यानसाँगकी यात्रा-संबंधी पुस्तकके बिना किसी पुरातत्त्वान्वेषीका काम नहीं चल सकता। हाँ मैं जानता हूँ कि जो जैन विद्वान् उपर्युक्त पुस्तकोंसे काम लेना चाहता है वह यदि चीनी भाषा न जानता हो, तो उसको अँगरेज़ी या फ्रेंच भाषाका जानकार होना चाहिए। परन्तु मैं खयाल करता हूँ कि आजकल बहुतसे जैनी अपने धर्मशास्त्रोंके विद्वान् होकर अँगरेज़ी पर भी इतना अधिकार रखते हैं कि वे इस भाषाकी उन तमाम पुस्तकोंको काममें लासकें जो उनको सफलतापूर्वक अध्ययन करनेमें ज़रूरी हों और एक ऐसे समाजके मनुष्योंको, जो मालमाल है, पुस्तकोंको मूल्यसे न डरना चाहिए।

जैनस्मारकों पर बौद्धस्मारक होनेका भ्रम ।

कई उदाहरण इस बातके मिले हैं कि वे इमारतें जो असलमें

जैन हैं ग़लतीसे बौद्ध मान ली गई थीं। एक कथा है जिससे अनुसार लगभग अठारह सौ वर्ष हुए महाराज कनिष्कने एक बा एक जैन स्तूपको ग़लतीसे बौद्ध स्तूप समझ लिया था और ज वे ऐसी ग़लती कर बैठते थे, तब इसमें कुछ आश्चर्य नहीं वि आजकलके पुरातत्त्ववेत्ता, जैनइमारतोंके निर्माणका यश कभी कभी बौद्धोंको दे देते हों। मेरा विश्वास है कि सर अलेग्जेंडर कनिष्कने यह कभी नहीं जाना कि जैनोंने भी बौद्धोंके समान स्वभावतः स्तूप बनाये थे और अपनी पवित्र इमारतोंके चारों ओर पत्थरके घेरे लगाये थे। कनिष्क ऐसे घेरोंको हमेशा 'बौद्ध घेरे' कहा करते थे और उन्हें जब कभी किसी टूटे फूटे स्तूपके चिन्ह मिले तब उन्होंने यही समझा कि उस स्थानका संबंध बौद्धोंसे था। यद्यपि बम्बईके विद्वान् पंडित भगवानलाल इन्द्रजीको मालूम था कि जैनोंने स्तूप बनाये थे और उन्होंने अपने इस मतको सन् १८६९ ईसवीमें ही प्रकाशित कर दिया था, तो भी पुरातत्त्वान्वेषियोंका ध्यान उस समय तक जैनस्तूपोंकी खोजकी तरफ़ न गया जबतक कि तीस वर्ष बाद सन् १८९७ ईसवीमें बुहलरने अपना "मथुराके जैनस्तूपकी एक कथा" शीर्षक निबंध प्रकाशित न किया। मेरी पुस्तक—जिसका नाम "मथुराका जैनस्तूप और अन्य प्राचीन वस्तुयें" है—सन् १९०१ ईसवीमें प्रकाशित हुई जिससे सब विद्यार्थियोंको मालूम हो गया कि बौद्धोंके समान जैनोंके भी स्तूप

1. A Segend of the Jain Stupa at Mathura.
2. The Jain stupa and other antiquities of Mathura

और घेरे किसी समय बहुलतासे मौजूद थे । परन्तु अब भी किसीने जमीनके ऊपरके मौजूद स्तूपोंमेंसे एकको भी जैनस्तूप नहीं प्रकट किया । मथुराका स्तूप जिसका हाल मैंने अपनी पुस्तकमें लिखा है बुरी तरहसे खोदे जानेसे बिलकुल नष्ट हो गया है । मुझे पक्का विश्वास है कि जैनस्तूप अब भी विद्यमान हैं और खोज करने पर उनका पता लगसकता है । और स्थानोंकी अपेक्षा राजपूतानेमें उनके मिलनेकी अधिक संभावना है ।

कौशाम्बीवाला मामला ।

मेरे खयाल में इस बातकी बहुत कुछ संभावना है कि जिला इलाहाबादके अंतर्गत ' कोशाम ' ग्रामके भग्नावशेष प्रायः जैन सिद्ध होंगे—वे कनिंघमके मतानुसार बौद्ध नहीं मालूम होते । यह ग्राम निस्संदेह जैनोंका कौशाम्बी नगरी रहा होगा और उसमें जिस जगह जैनमंदिर मौजूद है वह स्थान अब भी महावीरके अनुयायियोंका तीर्थक्षेत्र है । मैंने इस बातके पक्के सुबूत दिये हैं कि बौद्धोंकी कौशाम्बी नगरी एक और स्थान पर थी जो बारहटसे दूर नहीं है । इस विषय पर मेरे निबंधके प्रकाशित होनेके बाद डाक्टर फ्लीटने यह दिखलाया है कि पाणिनिने कौशाम्बी और बन-कौशाम्बीमें भेद किया है । मुझे विश्वास है कि बौद्धोंकी कौशाम्बी नगरी बन (जंगल) में बसी हुई बन-कौशाम्बी थी ।

मैं कोशामकी प्राचीन वस्तुओंके अध्ययनकी ओर जैनोंका ध्यान

1. Kausambi and Sravasti, J. R. A. S. July 1898.
2. J. R. A. S., 1907, P. 511.

ख़ास तौर पर खींचना चाहता हूँ। मैं यह दिखलानेके लिए काफी कह चुका हूँ कि इस विषयकी बहुतसी बातोंका निर्णय होना बाकी है।

जमीनके ऊपरके स्मारकोंका निरीक्षण।

जमीनके ऊपरकी जैन इमारतोंका हाल सावधानीके साथ दरयाफ्त करने और लिखनेसे बहुतसी बातोंका पता लग सकता है। इन इमारतोंका अध्ययन जैनग्रंथों और चीनी प्रवासियों तथा अन्य लेखकोंकी पुस्तकोंके साथ करना चाहिए। जो मनुष्य इमारतोंके निरीक्षण करने और उनका वर्णन लिखनेका काम करें उनको सफलता प्राप्त करनेके लिए उन नक्शोंको जो मौजूद हैं बुद्धिमानीके साथ काममें लाना चाहिए, आसपासके स्थानोंका हाल साफ़ साफ़ लिखना चाहिए, हरएक चीज़का नाम ठीक ठीक लिखना चाहिए और फ़ोटो खूब लेने चाहिए। चाहे जमीन खोदनेका काम न भी किया जाय तो भी ऐसे निरीक्षणोंसे जैनधर्मके इतिहास पर और विशेष कर इस बात पर कि जैनधर्मका विध्वंस उन देशोंमें कैसे हुआ जहाँ उसके किसी समय ढेरके ढेर अनुयायी थे बहुत प्रकाश पड़ेगा।

ग्रंथावली।

मैं सब जिज्ञासुओंसे अनुरोध करता हूँ कि वे मि० गुरिनौके महान् ग्रंथ “जैनग्रंथावलीके विषयमें निबंध” को पढ़ें। यह ग्रंथ पेरि-

1. 'Essai de bibliographie Jaina,' published in the *Annales du musec Guimet*, by Leroux Paris, 1906.

समें सन् १९०६ ईसवीमें छपा था। इस ग्रंथका एक परिशिष्ट “जैनग्रंथावली पर टिप्पणियाँ” भी जुलाई अगस्त सन् १९०९ के जनरल एशियाटिकमें निकल चुका है। सन् १९०९ ईसवीतक जैनधर्मके विषयमें पुस्तकों, समाचारपत्रों इत्यादिमें जो कुछ किसी भी भाषामें छप चुका है उस सबका परिचय इन ग्रंथोंमें दिया गया है। ये ग्रंथ फ्रेंचभाषामें हैं परन्तु जो मनुष्य फ्रेंच भाषा नहीं जानता वह भी इन पुस्तकोंसे बहुत लाभ उठा सकता है।

खुदाईका काम।

इमारतों इत्यादिकी खोजके लिए जमीनको खोदनेका काम जियादा मुश्किल है और यह काम यदि विस्तारके साथ किया जाय, तो पुरातत्त्वविभागके डाइरेक्टर जनरल या किसी प्रांतीय अफसरकी सम्मतिसे होना चाहिए। बुरे तरीकेसे और लापरवाहीके साथ खुदाई करनेसे बहुत नुकसान हो चुका है। मैं ऊपर कह आया हूँ कि मथुराके बहुमूल्य जैनस्तूपका किस तरह सत्यानाश हो गया और उसकी खुदाईके संबंधकी जरूरी बातें फोटो इत्यादि भी नहीं रक्खे गये। यह जरूरी है कि खुदाईका काम होते समय जरा जरासी बातको भी लिखते जाना चाहिए, जो चीज जिस जगह पर मिले उस स्थानको ठीक ठीक लिख लेना चाहिए, और शिलालेखों पर कागज चिपकाकर उनकी नकल उतार लेनी चाहिए। खुदाईके काममें प्रवीण निरीक्षककी जरूरत है।

1. 'Notes de bibliographie Jaina.'
2. Journal Asitique for July-August, 1909.

काम कैसे शुरू करना चाहिए ?

अन्तमें मैं प्रस्ताव करता हूँ कि जैनोंको एक पुरातत्त्वसंबंधी समिति स्थापित करनी चाहिए जो ऊपर कहे हुए मार्गके अनुसार ऐतिहासिक खोजका कार्यक्रम तैयार करे और आवश्यकतानुसार धन इकट्ठा करे। धनकी मात्रा बहुत होना चाहिए। यदि कोई जैन कार्यकर्ता, जो काफी योग्यता रखता हो और जिसे जैनसमाजसे वेतन मिलता हो, सरकारी पुरातत्त्वखाते (Archaeological Survey) में काम करनेपर नियत कर दिया जाय, तो वह बहुत काम कर सकता है और यह और भी अच्छा होगा कि ऐसे कई कार्यकर्ता सरकारी अफसरोंके निरीक्षणमें काम करें। यदि जैनी उचित समझें, तो इस लेखकी नकल सरकारी पुरातत्त्व-विभागके डाइरेक्टर—जनरलको सूचनाके लिए भेज दें।

अनुवादक,—संशोधक।

शांति-वैभव ।

(३)

आत्मनिर्भरताका माहात्म्य ।



आत्मविश्वासके लिए आत्मनिर्भरताकी बड़ी जरूरत है। आत्मनिर्भरताके विना आत्मविश्वास ऐसा ही है जैसा भोजन बनानेका बरतन बिना भोजनके। आत्मविश्वाससे केवल इस बातका

पता लगता है कि हममें क्या क्या काम करनेकी शक्ति है, हम क्या क्या कर सकते हैं; परंतु आत्मनिर्भरतासे जिन बातोंकी सम्भावना की जाती है वे कार्यका रूप धारण कर लेती हैं । एक शिल्पकार किसी पत्थरके टुकड़ेको देखता है । उसका आत्मविश्वास उसको केवल यह बतलाता है कि इसमेंसे एक बड़ी सुंदर मूर्ति बन सकती है; परंतु आत्मनिर्भरता उस पत्थरके टुकड़ेको उसके द्वारा मूर्तिकारूप धारण करा देती है । पहले विश्वास है फिर आत्मनिर्भरता है । पहले किसी कामके करनेकी सम्भावना की जाती है पीछे तद्रूप क्रिया होती है । सम्भावनाका नाम आत्मविश्वास है और अपने लिए तद्रूप क्रियाका नाम आत्मनिर्भरता है ।

जो मनुष्य आत्मनिर्भरता प्राप्त करलेता है वह कहा करता है कि मेरी शक्तियोंका, मेरी सम्भावनाओंका, मेरे सिवाय और कोई अनुमान नहीं कर सकता । कोई मुझे भला या बुरा नहीं बना सकता । मैं स्वयं ही अपनेको भला या बुरा बना सकता हूँ । आत्मनिर्भर पुरुष अपनी आर्थिक, सामाजिक, मानसिक, शारीरिक तथा आत्मिक दशाको आप ही सुधार सकता है । मनुष्यका जीवन कैसा होना चाहिए, यह एक ऐसा प्रश्न है कि जिसको प्रत्येक व्यक्ति आप ही विचार करके निश्चय कर सकता है । इसके लिए मनुष्यको अपने बल पर खड़ा होना चाहिए । दूसरोंका सहारा तकना और उनके भरोसे पर रहना निरर्थक है । प्रकृति इस बातका साक्षात् उदाहरण है । प्रकृतिमें देखिए जो काम स्वयं करनेका है उसको स्वयं ही करना पड़ता है । अपनी जगह दूसरोंको भेजनेसे अथवा

दूसरेकी जगह आप जानेसे कभी काम नहीं चलता । प्रकृति सदैव बतलाती रहती है कि मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है । चाहे वह अपनेको अपना मित्र बना ले और चाहे शत्रु बना ले, यह उसीके आधीन है । साधारण उदाहरण व्यायाम (कसरत) का लीजिए । क्या यह सम्भव है कि कोई मनुष्य अपनी जगह दूसरेको अखाड़ेमें भेज दे और शरीर उसका पुष्ट हो जावे ? कदापि नहीं । जब तक वह स्वयं जाकर अपने शरीरसे श्रम नहीं करेगा और व्यायामके सिद्धांतों पर अपना समय और उपयोग न लगायगा, तबतक कोई लाभ नहीं हो सकता । ऐसे ही यदि कोई रोग होजाय तो जबतक मनुष्य स्वयं ओषधिका सेवन न करे, संसारभर की ओषधियाँ उसके लिए निष्फल हैं । यह कदापि सम्भव नहीं कि अपने पेटकी पीड़ा दूसरेके चूरन खानेसे दूर होजाय । रोगसे निवृत्ति पानेके लिए स्वयं ओषधि सेवन करनेकी जरूरत है । धर्मके सम्बंधमें भी यही बात है । संसारभरके धर्मोंके सिद्धांत उस समयतक कुछ भी कार्यकारी नहीं जबतक कि प्रत्येक व्यक्ति उनको अपने जीवनका आधार न बना ले और इस बातका दृढ़ विश्वास और संकल्प न कर ले कि मेरा जीवन इन्हीं पर निर्भर है—मैं इन्हींके द्वारा अपने जीवनको सुधार सकता हूँ । धर्म उस गाड़ीके समान नहीं है जिसमें गद्दे तकिये लगे हुए हैं और बैठनेवालेको केवल टिकटके दाम देने पड़ते हैं; शेष सब काम दूसरे लोग कर लेते हैं । धर्ममें मनुष्यको सब ही काम अपने आप करने होते हैं ।

चाहे सहायता दूसरोंसे कितनी ही ले; परंतु मनुष्यको अपने ऊपर निर्भर रहना चाहिए। उसको यह न समझना चाहिए कि मैं गाड़ीका केवल एक मुसाफिर हूँ; किंतु यह समझना चाहिए कि गाड़ीका चलानेवाला मैं ही हूँ। मैं गाड़ीका ड्राइवर इंजीनियर हूँ और गाड़ी मेरा जीवन है। हमको अपने ऊपर भरोसा करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो जीवन व्यर्थ है। ऐसे जीवनसे कोई लाभ नहीं।

जो कुछ दूसरे मनुष्य हमारे लिए कर सकते हैं वह यह है कि वे हमको अवसर दे सकते हैं। हमको ऐसे अवसरोंसे कभी न चूकना चाहिए; किंतु सदैव उनकी खोज रखनी चाहिए। जीवन अवसरोंका एक समूह है जो एकके बाद एक आते रहते हैं। इन अवसरोंको अच्छा बुरा हम जैसा चाहें बना सकते हैं। यदि हम जीवनको ठीक बनाना चाहते हैं तो अवसरको कदापि नहीं चुकाना चाहिए और यथाशक्ति उससे अच्छा परिणाम निकालनेका उद्योग करना चाहिए।

पुराने जमानेके रसायन बनानेवाले कीमियागर प्रायः कहा करते थे कि केवल एक आँचकी कमी रह गई। यदि वह लगजाती तो राँगा चाँदी और ताँबा सोना हो जाता। आचरणमें भी यही बात है। अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जिनका दिमाग़ बहुत अच्छा है, जिनमें ज्ञानकी भी कमी नहीं, धर्मबुद्धि भी पाई जाती है; परंतु केवल एक बातकी उनमें कमी है और उसीके न होनेसे उनके जीवनमें सफलता नहीं होती। वह बात आत्मनिर्भरता है। चाहे सब गुण

हों; परंतु यदि यह एक गुण नहीं है तो सब गुण व्यर्थ हैं। आत्म-निर्भरताके होनेसे ये सब गुण एकत्रित होकर एक जीवनशक्ति पैदा कर देते हैं और कार्यमें सफलता होते देर नहीं लगती। जिस मनुष्यमें आत्मनिर्भरता नहीं पाई जाती उसकी आत्मा निर्बल होती है। उसे प्रत्येक कार्यमें संदेह रहता है और जो कुछ भी वह करता है सब 'हिचरमिचर' करके करता है। उसको हरएक कामके करनेमें भय मालूम होता है और रात दिन यही चिंता लगी रहती है कि कहीं श्रम निष्फल न चला जाय। वह सदा यही बाट निहारता रहता है कि कोई आकर मुझे राय दे। उसमें इतना साहस और आत्मबल नहीं होता कि स्वयं विचार करे और जो उचित और योग्य समझे उसे कर डाले। ऐसा मनुष्य अपनी कायरता और मान बढ़ाईमें प्रत्येक असफलताका कारण दूसरोंके सिर मँड देता है। उसे सदा यही शिकायत रहती है कि लोग मेरे मूल्यको नहीं पहचानते, मेरा कुछ मान नहीं करते और मुझको तुच्छ समझते हैं। वह अपने मनमें समझता है कि समाज मेरे प्रतिकूल विचार किया करता है। अपना दोष मालूम करके उसके दूर करनेका तो उद्योग वह कभी करता नहीं; हाँ, दूसरोंको अपने द्वेषी और शत्रु सदैव जानता रहता है। ऐसे मनुष्यको शांति प्राप्त होना नितांत दुर्लभ है। उसको शांति कहाँसे प्राप्त हो ? उसको तो सदैव यही चिंता रहती है कि मेरे समान संसारमें कोई भी दुखी नहीं, न कोई इतना दरिद्र है और न किसीको इतनी असफलता हुई है।

इसके विपरीत जिस मनुष्यमें आत्मनिर्भरता होती है उसके विचार और ही भाँतिके होते हैं । वह सदा इस बातके जाननेकी धुनमें लगा रहता है कि मुझमें कौन कौनसे अवगुण हैं और मैं उन्हें कैसे दूर कर सकता हूँ । उसको इस बातका पूर्णरूपसे निश्चय होता है कि सम्पूर्ण बाह्य प्रभावोंके जीतनेकी मुझमें शक्ति है । वह जानता है कि कठिनाइयोंका उपस्थित होना कोई अनहोनी बात नहीं है । जितने जितने बड़े बड़े महात्मा हुए हैं सबने अनेक दुःखोंका सामना किया है, बड़ी बड़ी आपत्तियोंको झेला है । आपत्तियोंसे डरना कायरोंका काम है । आपत्तियोंका सामना करना और सहन करनाही वीरता है । वह समझता है कि असफलता स्थायी नहीं है, क्षणमात्रके लिए है । असफलतासे निराश न होना चाहिए । उद्योग किये जाओ । एक दिन सफलता अवश्य होगी । जैसे रेलगाड़ीकी यात्रामें कभी कभी रास्तेमें डाट आजाती है तो थोड़े समयके लिए अँधेरा हो जाता है, परंतु डाटके निकलते ही उजाला हो जाता है । यही हाल जीवनका है । असफलताका अँधेरा कुछ समयके लिए रहता है फिर सफलताका उजाला आजाता है ।

वह जाति सबसे अधिक बलवती होती है जिसमें आत्मनिर्भरताका गुण होता है—जिसमें वे सब बात पाई जाती हैं, जो मनुष्योंके लिये आवश्यक हैं । यदि ऐसा नहीं है तो वह जाति बलहीन है । ऐसी जाति सदा शत्रुके पंजेमें दबी रहती है और उसका नाश होनेमें तनिक भी देर नहीं लगती । शत्रु उसे शीघ्र चारों ओरसे

घेर लेगा और उसका सर्वनाश कर देगा । ऐसी जाति कभी स्वतंत्र नहीं हो सकती सदा दासत्वमें ही दबी रहती है । किसी जातिकी स्वतंत्रता इस बात पर निर्भर है कि उसमें आंतरिक शक्ति कितनी है और वह स्वयं अपनी स्थितिको अचल रख सकती है या नहीं । शत्रुसे सुरक्षित रहनेके लिए अपनेमें बलकी आवश्यकता है । यही हाल पृथक् पृथक् व्यक्तिका भी है । कारण कि मनुष्योंके समूहका नाम ही जाति है । पृथक् पृथक् व्यक्तियोंसे ही जाति बनती है । जातिका इतिहास पृथक् पृथक् व्यक्तियोंके जीवनचरितोंका संग्रह है । इतिहास और जीवनचरितमें यही भेद है । जातिके जीवनचरितका नाम इतिहास है और पृथक् पृथक् व्यक्तिके इतिहासका नाम जीवनचरित है ।

यह एक मानी हुई बात है कि जो मनुष्य आपत्तिके समय दृढ़ रहता है और कठिनाइयोंको साहस और वीरतासे झेलता है वही अपना आंतरिक शक्तिसे रह सकता है । उसको किसीके सहारेकी आवश्यकता नहीं है और न उसे किसीकी सहानुभूतिकी जरूरत है । वह स्वयं अपने पर ही निर्भर रहता है । यदि कभी कोई मनुष्य अथवा कोई समाज दूसरों पर निर्भर रहकर काम करता हो तो समझ लो कि उसकी अवनतिका समय आगया, उसके पतन होनेमें अब कुछ देर नहीं है । सबको ज्ञात है कि जबतक मुग़ल बादशाह स्वयं कार्यतत्पर रहे, मुग़ल साम्राज्यकी बढ़ती होती रही और मुग़ल बादशाह सम्पूर्ण भारतके अधिकारी बने रहे; परंतु ज्यों ही उन्होंने अपने कार्योंको अपने कर्मचारियों

पर छोड़ा और वे स्वयं नाचरंग तमाशेमें लगे, त्यों ही अवनतिके चिन्ह प्रगट होने लगे और अंतमें मुग़ल राज्यका पटड़ा ही हो गया । यही हाल रोमदेशका हुआ । जबसे रोमवासियोंने स्वावलम्बनका त्याग किया और अपना कार्य्य युद्धमें पकड़े हुए कैदियों पर छोड़ दिया, उसी समयसे रोमदेशका पतन होने लगा और जातिमें आलस, भीरुता, दुर्बलता और कायरताने जोर पकड़ना शुरू कर दिया । इसीका परिणाम है कि रोम जैसा बलवान् क्षत्री विजयी देश बलहीन और साहसहीन होगया । दूसरों पर निर्भर रहनेसे मनुष्य निर्जीव और निर्बल हो जाता है और पुरुषत्वके गुण उसमेंसे निकल जाते हैं । यह बात अवश्य है कि आत्मनिर्भरताके लिए कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं पर कठिनाई झेलना पुरुषोंका काम है और संसारमें कर्तव्यका मार्ग है । बहुतसे मनुष्य ऐसे आलसी और दुर्बल हैं कि उनसे किसी कठिनाईका झेलना तो दूर रहा वे स्वयं अपने शरीरका मार भी नहीं उठा सकते । जाड़े गरमीकी तनिकसी तकलीफ़को भी नहीं सह सकते । ऐसे मनुष्य केवल भोगविलासोंमें ही रह जाते हैं और वे संसारमें कुछ नहीं कर सकते । जिस समय ईरानका बादशाह नादिरशाह दिल्लीतक पहुँचा और उसने मारधाड़ मचानी शुरू कर दी, उस समय दिल्लीका बादशाह मोहम्मदशाह अपने महलोंमें पड़ा हुआ मौज कर रहा था । जब हाथ पैर जोड़नेसे नादिरशाहने शान्ति धारण करली और वह दिल्लीके सम्राट्से मिलनेको आया, उस समय दोनों सम्राटोंमें जो बातचीत हुई वह उल्लेख करने योग्य है । मोहम्मदशाह बारीक तनजेबका कुरता पहने हुए

था। उसके दोनों तरफ़ पंखे चल रहे थे और गुलाबजलका छिड़काव हो रहा था।

इस सजधजसे मोहम्मदशाह नादिरशाहको लेनेके लिए किलेके दरवाजे तक आया। गरमी का मौसम था, तिस पर भी नादिरशाह भेड़की खालका कोट पहने हुए था! जब मोहम्मदशाहने नादिरशाहको पोस्तीन पहने हुए देखा तो बड़ा आश्चर्य किया और कहा कि “आप इस मौसममें यह पोस्तीन पहने हुए हैं!” इस पर नादिरशाहने उत्तर दिया कि “बादशाह सलामत, मुझे यह पोस्तीन ईरानसे हिन्दुस्तान तक ले आया और तुम्हें इस मुलायम तनजेबने दिल्लीके द्वारों तक भी न पहुँचाया!” तात्पर्य यह है कि कठिनाई झेलनेवाला मनुष्य सब कुछ कर सकता है, परंतु फलीफूली चूकनेवालेसे कुछ भी नहीं हो सकता। अत एव यदि किसी मनुष्यकी उच्च पद पर पहुँचनेकी अभिलाषा है तो उसको स्वयं अपने पर निर्भर रहना चाहिए। जिस बातमें उच्च पदकी इच्छा हो, उसमें दूसरों पर कभी निर्भर न रहना चाहिए। स्मरण रहे कि केवल यह समझ लेना कि हम सब कुछ कर सकते हैं और फिज़लका झूठा घमंड रखना, इसका नाम आत्मनिर्भरता नहीं है। आत्मनिर्भरता स्वयं प्रत्येक कामके करनेको कहते हैं। आत्मनिर्भर मनुष्य स्तंभके समान होता है।

आत्मनिर्भरता प्राप्त करनेके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य दूसरोंकी सहायता करनेके लिए तैयार रहे; परन्तु स्वयं सहायता न ढूँढ़े। जीवनके आरंभसे ही यह सोच ले कि जीवन एक ऐसा

युद्ध है कि जिसमें उसे स्वयं ही लड़ना है और स्वयं ही योद्धा बनना है। इस युद्धमें किरायेकी फौजसे काम नहीं चलता और दूसरोंके लड़नेसे विजय नहीं होसकती। साथ ही इस युद्धसे बचाव भी नहीं होसकता। इस युद्धसे बचना मृत्यु है। यदि बचोगे तो मरोगे और यदि भागोगे तो भी मरोगे। दूसरे मनुष्य तुम्हारी सहायता नहीं कर सकते। उनको अपने बहुतसे काम हैं। बहुतसे झगड़े उनके पीछे लगे हुए हैं। उन्हें इतना अवकाश कहाँ कि तुम्हारी सहायता करें। अतएव तुम्हें स्वयं ही लड़ना होगा और विजय प्राप्त करना होगा। इस युद्धमें विजय पानेके लिए केवल एक उपाय है और वह आत्मनिर्मरताका प्राप्त करना है।

जिन बातोंकी कमी तुम अपनेमें देखो उनको पूरा करनेका उद्योग करो। जैसे यदि तुम्हें इच्छा है कि तुम बातचीत करना सीख जाओ तो तुम्हें उचित है कि तुम अपनेको ऐसे कार्योंमें लगाओ जिनमें कि तुम्हें बोलना ही पड़े। यदि तुम्हें कुछ शोक रहता हो और हँसी खुशीसे तुम्हारा समय न बीतता हो तो तुम्हें चाहिए कि ऐसे मनुष्योंकी संगतिमें बैठो जो हँसमुख हों। ऐसा करनेमें चाहे तुम्हें कितनी ही कठिनाई हो, तुम इसकी कोई परवा मत करो। यदि तुम देखते हो कि तुममें कोई शक्ति नहीं है, परंतु वही शक्ति किसी दूसरे मनुष्यमें है तो तुम उससे कदापि ईर्ष्या या द्वेष मत करो और न उसे देखकर कभी अपने मनमें कुढ़ो; किन्तु तुम्हें चाहिए कि तुम उसे देख कर प्रसन्न होओ और इस बातका प्रयत्न करो कि वह मार्ग तुम्हें भी मिल जावे जिससे

उसने उस शक्तिको प्राप्त किया है । तुम आत्मनिर्भरता पर विश्वास रखो और अपना कर्तव्य भली भाँति पालन करते जाओ । वह शक्ति तुममें अवश्य आजवेगी । प्रत्येक व्यक्तिको जान लेना चाहिए कि मैं एक बड़ा भारी खजाना हूँ । खजाना ही नहीं किन्तु एक खानि हूँ जिसमें बड़े बड़े अमूल्य रत्न भरे हुए हैं । आवश्यकता केवल इतनी है कि उद्योग करके उनको निकाल लिया जावे; परंतु स्मरण रहे कि बिना हाथपैर हिलाये उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती ।

मनुष्यको उचित है कि दिन दिन अपनी उन्नति करता जाय और आगे आगे बढ़ता जाय । प्रायः मनुष्य दूसरोंसे आगे बढ़नेका उद्योग किया करते हैं; परंतु यह उनकी भूल है । दूसरोंसे आगे बढ़नेकी बजाय अपनेसे आगे बढ़नेका उद्योग करना चाहिए । ऐसा करनेसे बराबर उन्नति होती रहेगी और तमाम बातें ठीक ठीक बढ़ती जावेंगी । संसारमें जितने मनुष्योंने उन्नति की है सबने इसी बात पर पूर्ण रूपसे ध्यान दिया है कि आए दिन पिछले दिनसे अधिक अधिक उन्नति होती जाय ।

जितने हम परसों थे उससे कल आगे बढ़े और जितने कल थे उससे आज आगे बढ़े और जितने आज हैं उससे कल बढ़ेंगे । यह विचार सफलताका मूल है । दूसरोंके साथमें मुकाबला करना अथवा उनसे आगे बढ़नेका उद्योग करना निःसंदेह अच्छा है, परंतु इतना अच्छा नहीं है जितना अपनेको दिन दिन आगे बढ़ानेका उद्योग करना । आत्मनिर्भरतासे यह बात प्राप्त होती है और इस बातसे आत्मनिर्भरता प्राप्त होती है । एकका दूसरेसे घनिष्ठ संबन्ध है ।

अत एव प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि अपनी उन्नतिमें सदा दत्त-चित्त रहे; कठिनाई और भयके समय निराश न हो जावे । बहुतसी कठिनाइयाँ ऐसी होती हैं कि जब तक उनसे भय किया जाता है तब तक वे भारी मालूम होती हैं, परंतु जब उनके जीतनेका उद्योग किया जाता है तब वे कुछ भी नहीं रहतीं ।

आत्मनिर्भर मनुष्य दूसरोंके यशके आश्रय पर कभी नहीं रहता । वह स्वयं अपने लिए विचार करता है, स्वयं ही उद्योग करता है, और अपने पर ही निर्भर रहता है । परंतु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि ऐसा करते हुए हम अपने शुभ-चिन्तकोंकी शिक्षा भी न सुनें । यदि वे सच्चे भावसे हमें मार्ग बतलाते हों तो अवश्य सुनना चाहिए; परंतु सच्चे मित्र संसारमें बहुत कम मिलते हैं । सच्चे मित्रोंकी आवश्यकता भयके समय हुआ करती है, परंतु प्रायः ऐसा देखा गया है कि जो बड़े भारी मित्र बने होते हैं, वे भय या दुःखके समय 'टाँय टाँय फिस' निकल जाते हैं । सुखके सब साथी हैं, दुःखके समय सहायता करनेवाले बिरले ही बीर होते हैं । अतएव यह उचित है कि आपत्तिके समय मनुष्य अपने पाँव पर खड़े रहनेके योग्य हो । जितना वह आपत्तिका सामना करेगा उतना ही सबल होता जायगा और दूसरोंको भी सहायता देनेके योग्य होता जायगा । फिर उसके जीवनसे सदा दूसरोंको सहायता मिला करेगी और वह आत्मनिर्भरताके माहात्म्यका एक जीवित उदाहरण बन जायगा ।

दयाचन्द्र जैन बी. ए. ।

चिरंजीलाल माथुर बी. ए. ।

पद्मनन्दि और विनयसेन ।

(जैनसिद्धान्त भास्करके एक आक्षेपपर विचार)



भा स्करके नये अंकमें मुझ पर जो अनेक आक्षेप हैं उनमें एक आक्षेप इस विषयको लेकर किया गया है कि वीरसेन और जिनसेनकी परम्परामें पद्मनन्दि और विनयसेन नहीं हुए हैं ।

यह एक ऐसा प्रश्न है कि इस पर भद्रता और शिष्टताके साथ वर्षोंतक विचार किया जा सकता था; परन्तु सेठ पद्मराजजीको उनके ऐतिहासिक पण्डित्यके अभिमानने इतना असहिष्णु बना दिया है कि एक ही बारके उत्तरके प्रत्युत्तरमें वे शिष्टता और भद्रताकी रक्षा न कर सके । आपसे बाहर होकर उन्होंने मेरी अनभिज्ञता आदिकी गहरी समालोचना कर डाली और इस बातको सर्वथा भुला दिया कि इतिहासका निर्णय अध्ययन और विचारसे होता है क्रोध और अभिमानसे नहीं । हुआ भी वही; मैंने सेठजीके द्वितीय तृतीय अंकके आक्षेपका जो उत्तर जैनहितैषीके भाग ९ अंक ९ में दिया था उस पर वे जरा भी विचार न कर सके । यदि करते और इतिहासको इतिहास समझते—तो उन्हें यह प्रत्युत्तर लिखनेकी आवश्यकता ही न होती—उसीमें समाधान हो जाता ।

मुझे यदि यह मालूम होता कि सेठजी भास्करके सम्पादक केवल इस लिए बने हैं कि लोग उन्हें बड़ा भारी विद्वान् समझें, और जहाँ तहाँ उनकी इतिहासज्ञताके गीत गाये जाने लगे, तो मैं उक्त आक्षेप पर कुछ भी नहीं लिखता; चुप रह जाता । मेरी इसमें कुछ हानि भी न थी ।

सेठजीकी प्रशंसासे समाजका भी कुछ आने जानेवाला न था; सिवाय इसके कि सेठोंकी प्रशंसा और प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए उसने जो सभापति आदि बनानेके कई द्वार खोल रखे हैं उनमें एककी वृद्धि और हो जाती । परन्तु मैंने यह सोचकर कि एक ऐतिहासिक प्रश्नका निबटारा हो जायगा इस विषयमें लिखना आवश्यक समझा और हितैषीके ९ वें भागमें उन बातोंका खुलासा कर दिया जिनके कारण मैंने १ वीरसेन, २ पद्मनन्दि, ३ जिनसेन और ४ विनयसेन इस आचार्यपरम्पराका निश्चय किया था । मैं अपने विचारशील पाठकोंसे सविनय प्रार्थना करता हूँ कि वे जैनहितैषी भाग ९ पृष्ठ ५२२ निकाल कर मेरा लेख एक बार अवश्य पढ़ जावें और उसके बाद भास्करकी वर्तमान संख्याका इस विषय सम्बन्धी लेख पढ़ें । इसके बाद निश्चय करें कि सेठजीने मुझ पर जो आक्रमण किया है वह कहाँ तक ठीक है । पर यहाँ मैं यह प्रार्थना किये बिना नहीं रह सकता कि विचार करते समय इस बातको आप भूल जावें कि भास्कर खूब मोटा ताजा है, बहुमूल्य है और उसके सम्पादक एक धनी हैं; पर जैनहितैषी जरासा है, आडम्बरशून्य है और उसका सम्पादक जैनसमाजका एक निर्धन अल्पबुद्धि सेवक है । मोटाई छोटाई छोड़कर आप लोग सिर्फ़ दोनोंकी युक्तियोंको पढ़कर ही कुछ निश्चय करें ।

इस प्रश्नके सम्बन्धमें मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि मैं वीरसेनके बाद पद्मनन्दि और जिनसेनके बाद विनयसेनको मानता हूँ, सो इसका मतलब यह नहीं कि मैं इससे विरुद्ध बात माननेके

लिए तैयार ही नहीं हूँ । नहीं, यदि कोई विद्वान् मेरी दलीलों काट दे तो मैं बड़ी खुशीसे माननेको तैयार हूँ । मैं कोई सेठ नहीं, कोई इतिहासका विद्वान् नहीं, मेरे हाथमें कोई बड़ा भारी पुस्तकमंडाल भी नहीं; केवल एक विद्यार्थी हूँ, इस लिए मुझे इस बातका डर नहीं है कि लोग मेरे विषयमें क्या सोचेंगे । इस तरहका खयाल सेठ पद्मराजजी जैसे धनियों और तिहासज्ञोंकी ही हो सकता है और शायद इसी खयालसे वे युक्तियोंकी ओर ज़रा भी ध्यान न देकर केवल आक्रमण करके—भलाबुरा कहके अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करना चाहते हैं ।

अपनी मानताकी पुष्टिमें और सेठजीकी मानताके विरुद्धमें मैं हितैषीके उल्लेखित अंकमें काफी प्रमाण दे चुका हूँ; परन्तु पाठकोंको यह विषय स्पष्ट रीतिसे समझमें आ जावे इसके लिए संक्षेपमें यहाँ भी कुछ निवेदन कर देना चाहता हूँ । जो बातें पीछेसे मालूम हुई हैं उनको भी मैं इसमें शामिल कर दूँगा ।

संवत् ९०९ के बने हुए दर्शनसारमें ये गाथायें लिखी हैं:—

सिरिवीरसेणसीसो जिणसेणो सयलसत्थविण्णाणी ।

सिरि पउमणंदिपच्छा चउसंघसमुद्धरणधीरो ॥

तस्स य सीसो गुणवं गुणभद्रं दिव्वणाणपरिपुण्णो ।

पक्खोववासमंडिय महातवो भावलिंणो य ॥

तेण पुणो विय मिच्चं णेऊण मुणिसस विणयसेणस्स ।

सिद्धंतं घोसित्ता सयं गयं सग्गलयस्स ॥

पहली गाथाका अर्थ यह है कि श्रीवीरसेनाचार्यके शिष्य

जिनसेन—जो कि सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता थे—श्री पद्मनन्दिके पश्चात् चारों संघोंका उद्धरण करनेमें समर्थ अर्थात् आचार्य हुए ।

दूसरी तीसरी गाथाका अर्थ यह है कि फिर उनके शिष्य गुणवान् गुणभद्र हुए जो कि दिव्यज्ञानसे पूर्ण, एक एक पक्षका उपवास करनेवाले, बड़े भारी तपस्वी और सच्चा मुनि लिङ्ग धारण करनेवाले थे । उन्होंने श्रीविनयसेन मुनिकी मृत्यु होने पर सिद्धान्तोंका उपदेश किया और पीछे वे भी स्वर्गलोकको सिधारे ।

इन गाथाओंके आगेकी गाथाओंमें काष्ठासंघके उत्पादक कुमारसेनका जिक्र किया गया है और उसे विनयसेनका दीक्षित बतलाया है:—

आसी कुमारसेणो णंदियडे विणयसेण दिक्खय ओ ।

सण्णासभंजणेण य अमहियपुणदिक्खओ जाओ ॥

अर्थात् उक्त विनयसेन आचार्यका एक दीक्षित शिष्य कुमारसेन नन्दीतट नगरमें था । उसने एक बार संन्यास भंग करके फिर दीक्षा नहीं ली । इत्यादि ।

इन गाथाओंके आधारसे मैंने निश्चय किया है कि वीरसेनके बाद जिनसेन, जिनसेनके बाद विनयसेन और विनयसेनके बाद गुणभद्र आचार्य हुए हैं । इसकी पुष्टिमें बहुतसी युक्तियाँ दी जा सकती हैं:—

१ दर्शनसार इतिहासकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वका ग्रन्थ है । उसमें प्रत्येक संघकी उत्पत्तिका संवत् तक दिया है । इसके सिवाय वह बहुत प्राचीन है । विनयसेन आचार्यसे लगभग १५० वर्ष

पीछे ही वह लिखा गया है। इससे बीसों कल्पित आडम्बरपूर्ण पट्टा वलियोंकी अपेक्षा उसकी कीमत अधिक है।

२ विनयसेनके आचार्य होनेमें तो कोई भी सन्देह नहीं हो सकता। कारण, एक तो कुमारसेन उनका दीक्षित शिष्य था, ऐसा दर्शनसारमें स्पष्ट लिखा है और दीक्षा वही दे सकता है जो संघका आचार्य होता है। दूसरे जिनसेन स्वामीकी मृत्यु शक ७६९ के लगभग हुई है और गुणभद्रने महापुराणको शक ८२० में पूर्ण किया है। बीचमें वह बहुत समय तक अधूरा पड़ा रहा है और इसका कारण यही मालूम होता है कि गुणभद्रके पहले विनयसेन आचार्य हुए थे और किसी कारणसे उन्होंने उसे बनाना ठीक न समझा होगा। संभव है कि उनमें काव्य रचनेकी ही प्रतिभा न होगी। यह नियम नहीं कि जो विद्वान् हो उसे ग्रन्थ-कर्त्ता होना ही चाहिए। विद्वत्ता एक बात है और ग्रन्थकर्तृत्व दूसरी बात है। तीसरे विनयसेनका उल्लेख स्वयं जिनसेन स्वामीने पार्श्वभ्युदय काव्यमें किया है और उन्हें अपना गुरुभाई और महामुनि बतलाया है—(श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृंगः श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान्)। अतएव गुणभद्र शिष्यकी अपेक्षा उनकी दृष्टिमें विनयसेन सतीर्थकी योग्यता ही विशेष जँची होगी और इसलिए उन्होंने विनयसेनको ही आचार्यपद दिया होगा।

३ वीरसेनके बाद पद्मनन्दि आचार्य हुए। इस विषयमें सबसे बड़ी शंका यह है कि 'पद्मनन्दि' यह नाम सेनसंघके नामों सरीखा नहीं है किन्तु नन्दिसंघ सरीखा है, इस लिए वे वीरसेनके बाद

आचार्य नहीं हो सकते । परन्तु यह ठीक नहीं । क्योंकि एक ही नन्दि, सेन, देव, सिंह इन चारों संघोंमें ऐसा द्वेषभाव था बड़ा भारी भेद न था कि एक संघका दीक्षित विद्वान् दूसरे संघका आचार्य न हो सके । आवश्यकता होने पर दूसरे संघके मुनिको भी आचार्य बनाते होंगे । पद्मनन्दिका भी ऐसा ही होना संभव है । सेनसंघके आचार्य होने पर शायद उनका राज, वीर, भद्र, सेन, पदान्तवाला नाम भी रक्खा गया हो; परन्तु पिछला नाम विशेष प्रसिद्ध होनेके कारण उनका उसी नामसे उल्लेख किया गया हो । दूसरे यह जो नियम है कि सेनसंघके नामान्तमें भद्र, सेन, वीर, राज; नन्दि-संघमें नन्दि, चन्द्र, कीर्ति, भूषण; सिंहमें सिंह, कुंभ, आस्रव, सागर; देवमें देव, दत्त, नाग और तुंग होते हैं सो यह ब्रह्माका वाक्य नहीं है कि सर्वत्र इसकी पालना होती ही रही हो । इसके अपवाद भी दिखलाई देते हैं । गुणभद्र स्वामीने उत्तरपुराणकी प्रशास्तिमें जिन-सेनके साथ अपने दशरथ नामक गुरुका भी नामोल्लेख किया है— ('दशरथगुरुरासीत्तस्य धीमान्सधर्मा' इत्यादि) । यह नाम ऐसा है कि इसमें चारों संघोंमेंसे किसीका भी अन्त्यनामपद नहीं है; परन्तु होंगे ये अवश्य ही किसी संघके । इसी तरह विक्रान्तकौरवीय नाटककी जो प्रशास्ति भास्करमें प्रकाशित हो चुकी है उसमें समन्त-भद्रका शिष्य शिवकोटि और शिवायनको बतलाया है और उन्हींकी परम्परामें वीरसेन जिनसेन आदिको बतलाया है; परन्तु शिवकोटि और शिवायन नाममें भी किसी संघका चिन्ह नहीं है । ' इन्सक्रि-पशन्स एट श्रवणवेलगोला ' के ४७ वें शिलालेखमें वीरनन्दिके

श्रीगोलाचार्य नामक प्रसिद्ध शिष्यका उल्लेख है। इसी तरह ४८ पद्य लेखमें दिवाकरनन्दिके शिष्य मलधारी देव और उनके शिष्य शुभर चन्द्रदेवका उल्लेख है। इस तरहके और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उक्त नामान्तपदोंके नियमका कहीं कहीं उल्लंघन भी किया जाता था। संभव है कि 'पद्मनन्दि' नाम भी उसी अपवादका एक उदाहरण हो।

४ भास्करके द्वितीय-तृतीय अंकमें मङ्गराज कविका एक शिलालेख प्रकाशित हुआ है जो १३५५ शक्र संवत्का लिखा हुआ है। उसके श्लोक १८-१९-२०-२१ में लिखा हुआ है कि-भट्ट अकलंकदेवके स्वर्गवास होनेके बाद देव, नन्दि, सिंह, सेन ये चार संघ हुए। यदि यह बात ठीक है तो कहना होगा कि लगभग वीरसेन और पद्मनन्दि स्वामीके समय ही सेनसंघ भेद हुआ होगा और इस लिए यह बहुत संभव है कि उस समय नामके विषयमें यह नियम न बना हो कि सेनसंघके आचार्यके नामान्तमें सेन या भद्रादि होना ही चाहिए। गुणभद्र स्वामी उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें अपने सेनसंघका उल्लेख करते हुए 'वीरसेन' से ही उसकी परम्परा शुरू करते हैं। इससे भी मंगराज कविके कथनकी सत्यता प्रतीत होती है। अभी तक अकलंकदेवसे पहलेके बने हुए किसी भी ग्रन्थमें या शिलालेखादिमें इन नन्दि आदि संघोंका उल्लेख ही मिलता है। पद्मपुराणमें संघका जिक्र भी नहीं, भगवतीआराधनामें भी नहीं, अकलंक, विद्यानन्द, माणिक्यनन्दि प्रभाचन्द्र, समन्तभद्र, पूज्यपाद आदिके ग्रन्थोंमें नहीं और ये ही सब

स्य हैं जो अकलंकदेवके स्वर्गवासके पहले पहलेके हैं । इससे भी गराजका कथन ठीक मालूम होता है । पट्टावलियोंको छोड़कर और श्रुतावतारकथाको छोड़कर और कोई प्रमाण ऐसा नहीं मिला । जो अर्हद्वलि आचार्यके समय नन्दिसेन आदि संघोंका भेद होना बतलाता हो । बल्कि ऐसे ही प्रमाण मिल रहे हैं जिसमे अकलंकदेवके समयमें ही इन संघोंका प्रारंभ जान पड़ता है । प्राश्चर्य नहीं जो अकलंकदेवसे देवसंघ, वीरसेनसे सेनसंघ और गणिक्यनन्दिसे नन्दिसंघ प्रारंभ हुआ है । इस विषयमें अभी हम नेश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते हैं । समय आ रहा है जब हम इस विषयमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित करनेको समर्थ हो सकेंगे । इस समय हम केवल यही सिद्ध कर रहे हैं कि वीरसेनके बाद पद्मनन्दिका आचार्य होना असंभव नहीं है ।

९ वीरसेन स्वामीके समयमें एक पद्मनन्दि नामक आचार्यका उदय भी लगता है । आचार्य प्रभाचन्द्रने उन्हें अपना गुरु बतलाया है:—

श्रीपद्मनन्दिस्सैद्धान्तशिष्योऽनेकगुणालयः ।

प्रभाचन्द्रश्चिरं जीयाद्रत्निनन्दिपदे रतः ॥

न्यायकुमुदचन्द्रोदयके कर्ता इन प्रभाचन्द्रका स्मरण जिनसेन स्वामीने आदिपुराणमें किया है और प्रभाचन्द्र, वीरसेनके समकालीन विद्वान् थे । अतएव उसी समय प्रभाचन्द्रके गुरु पद्मनन्दिका होना और उनका वीरसेनके पद पर आचार्य बनना सर्वथा संभव है । प्रभाचन्द्रने उन्हें 'मैद्धान्ती' विशेषण दिया है और वीरसेनस्वामी

भी सिद्धान्तशास्त्रोंके टीकाकार थे, अतएव वे उनके पदके सर्वो योग्य कहे जा सकते हैं । प्रभाचन्द्रने अपनेको अकलंकदेवका शिष्य बतलाया है और अकलंकदेव वीरसेन जिनसेन आदि सर्व स्थान अमोघवर्षकी राजधानी मान्यखेट या उसके आसपास रहे हैं अतएव प्रभाचन्द्रके गुरु पद्मनन्दि भी उनके समीपी होंगे और इस कारण भी उनका वीरसेनके बाद आचार्य होना विशेष संभव जा पड़ता है ।

६ इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारमें लिखा है चित्रकूटपुरनिवास एलाचार्य नामके विद्वान् सिद्धान्त शास्त्रोंके ज्ञाता हुए और उन पास वीरसेन स्वामी (जिनसेनके गुरु) ने अध्ययन करके धवर्णा टीका ग्रन्थ लिखे । इस परसे मैंने अपने पिछले लेखोंमें यह कल्पन की थी कि शायद इन एलाचार्यका ही दूसरा नाम पद्मनन्दि हो और वीरसेन स्वामीके बाद वे ही उनके पद पर आचार्य बना दिये गये हों तो संभव हो सकता है । इस पर सेठ पद्मराजजी बेतरह बिगड़े हैं और अपने पास इतिहासकी पाठशालाका अभाव बतलाकर उन्होंने मुझे उसमें पढ़ानेसे इंकार कर दिया है ! पर जान पड़ता है आप मेरे अभिप्रायको समझे नहीं ! कठिनाई तो यही है कि आपका बढ़प्पन और अभिमान आपको कुछ समझ सकनेकी चेष्टा ही नहीं करने देता है । अस्तु । मैं अपने ' कुन्दकुन्दाचार्य ' नामक विस्तृत लेखमें बतला चुका हूँ कि पट्टावलीमें जो एलाचार्य, गृध्रपिच्छ, वक्रग्रीव नाम कुन्दकुन्दके हैं उनके लिए कोई प्रमाण नहीं है; वे बिलकुल कल्पित हैं । सेठजीको उस लेखकी युक्तियों पर विचार

करना चाहिए और वीरसेनके समयमें एलाचार्यका नाम सुनकर घबड़ा न जाना चाहिए । मेरा यह अनुमान है कि जब कुन्दकुन्दका नाम एलाचार्य नहीं था और एलाचार्य वीरसेनके समकालीन हैं तब संभव है कि उन्हींका नाम पद्मनन्दि भी हो और इन पद्मनन्दीके दूसरे नाम एलाचार्यको, भ्रमसे पहले पद्मनन्दि अर्थात् कुन्दकुन्दके नामोंमें पट्टावलीके लेखक महात्माओंने जोड़ दिया हो । चूँकि दर्शनसारमें पद्मनन्दिको जिनसेनका पूर्ववर्ती आचार्य बतलाया है, इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि एलाचार्य ही वे पद्मनन्दि हों । खेद है कि सेठजी बातके समझे बिना ही दूसरोंपर आक्रमण कर बैठते हैं और मजा यह कि अपनी बातकी पुष्टिमें कोई प्रमाण देने की भी आवश्यकता नहीं समझते हैं ।

७ यह पूछा गया है कि विनयसेन और पद्मनन्दिका उल्लेख जिनसेन णुणभद्रः हस्तिमल्लादिने तथा हरिवंशपुराणके कर्त्ताने किये नहीं किया ? इसका उत्तर यह है कि एक तो किसीके उल्लेख न करनेसे उनका अस्तित्व असिद्ध नहीं हो सकता; यह ग्रन्थकर्त्ताकी इच्छा है कि चाहे जिस आचार्यका स्मरण करे । आपके हरिवंशके कर्त्ताने वीरसेनका स्मरण किया है; परन्तु उनके समकालीन या कुछ पूर्ववर्ती अकलंक विद्यानन्द प्रभाचन्द्र आदि सुप्रसिद्ध विद्वानोंका स्मरण नहीं किया है जब कि आदिपुराणके कर्त्ता न इन सबका किया है । दूसरे हस्तिमल्ल बहुत पीछेके लेखक हैं । उन्होंने उन्हींका उल्लेख किया है जिनकी रचना उन्होंने देखी थी या जिनका नाम सुना था । पर विनयसेन और पद्मनन्दि ग्रन्थकर्त्ता नहीं मालूम

हैते; वे विद्वान् आचार्य ही थे । इस कारण भी उनका उल्लेख जहाँ तहाँ नहीं मिलता । तीसरे पद्मनन्दि और विनयसेन गुरुपरम्परामें नहीं है, पट्टपरम्परामें हैं । वीरसेनके शिष्य जिनसेन, जिनसेनवे गुणभद्र, गुणभद्रके लोकसेन यह तो शिष्यपरम्परा है और वीरसेनके पट्टपर पद्मनन्दि, फिर जिनसेन, विनयसेन और फिर गुणभद्र यह पट्टपरम्परा है । सो उल्लेख करनेवालोंने गुरुपरम्पराका ही किया है । पद्धति भी यही है । और यदि किसीने उल्लेख नहीं भी किया, तो इससे क्या ? जब एक ९ वीं शताब्दिका ग्रन्थकर्त्ता अपने ऐतिहासिक ग्रन्थमें दोनोंका विश्वस्त परिचय दे रहा है, तब उसमें आप सन्देह क्यों करते हैं ? क्या उक्त ग्रन्थको आप अपनी पट्टा-वलियोंसे कम प्रामाणिक समझते हैं ? खेद है कि आपने दो तीन बार उल्टा सीधा बहुत कुछ लिखनेका कष्ट उठाया, पर यह एक

~~पर भी न लिखा कि~~ ~~एक बात आप~~ ~~नान्य क्यों है ?~~ ~~चा~~

पहले जो दर्शनसारकी गाथा दी गई है, यदि - उसका अर्थ यह किया जाय कि श्रीपद्मनन्दिके पश्चात् वीरसेनके शिष्य जिनसेन संघके स्वामी हुए, अर्थात् पहले पद्मनन्दि, फिर जिनसेन हुए, तो यह भी हो सकता है और तब इससे श्रुतावतारकी परम्परा भी मिल जाती है । हम यह माननेके लिए भी तैयार हैं; परन्तु तब भी पद्मनन्दि-सेनसंघकी आचार्यपरम्परासे अलग नहीं हो सकते ।

९ पद्मनन्दि और विनयसेन जिनसेनादिके समकालीन विद्वान् थे, पर पट्टावलीके आचार्य नहीं थे इसके लिए भी आपने कोई प्रमाण नहीं दिया । पर हमारे पास एक प्रमाण तो यह है कि कुमारसेन

विनयसेनका दीक्षित था । अर्थात् विनयसेनमें दीक्षा देनेकी योग्यता थी । दूसरे देवसेनकी गाथाओंमें जो यह लिखा है कि जिनसेन श्रीपद्मनन्दिके पश्चात् चारों संघका समुद्धरण करनेमें धीर हुए, सो यही बतलाता है कि जिनसेनके पहले पद्मनन्दि चारों संघोंके उद्धारका कार्य करते थे अर्थात् आचार्य थे । चार संघमें मुनि भी शामिल हैं और उनका उद्धरण या उद्धार या शासन आचार्य ही कर सकता है, साधारण मुनि या विद्वान् नहीं । इसी तरह आगेकी गाथामें स्पष्ट कहा है कि विनयसेनकी मृत्यु होने पर गुणभद्रने सिद्धान्तोंका घोषण किया, अर्थात् इसके पहले विनयसेन यह काम करते थे और कुमारसेन उसी समयका दीक्षित था ।

१० सेनगणकी पट्टावली कोई प्रामाणिक पट्टावली नहीं है । यदि आप थोड़ीसी भी बुद्धि लगाकर विचार करते, तो उसके ज़ोर पर इतनी उछल कूद मचानेको तैयार न होते । मैंने हितैषीके उक्त पिछले अंकमें लिखा था कि सेनगणकी पट्टावलीका लेखक जिनसेनाचार्यको धवल-महाधवल-पुराणादि सब ग्रन्थोंका रचयिता और गुणभद्रको म्यारह अंग चौदह पूर्वका ज्ञाता बतलाता है । इसीसे उसकी विद्वत्ताका पता लगता है; परन्तु आपने उसकी ओर ज़रा भी ध्यान न दिया । उक्त पट्टावली कितनी रद्दी और कल्पित है, इसका विचार हमने भास्करकी समालोचनामें भी किया है । यहाँ इतना ही कहना बस है कि उसको प्रमाण मानकर आप देवसेनके दर्शनसारको अप्रामाणिक नहीं ठहरा सकते । हमसे आप सेनगणकी दूसरी प्रामाणिक पट्टावली माँगते हैं; सो यह काम तो आपका है । यदि

प्रामाणिक नहीं मिलती, तो क्या हम उस आप ही जैसे ऐतिहासिक-की लिखी हुई ऊँटपटाँग बातोंको मान लें ?

मुझे आशा नहीं कि भास्करसम्पादक इन बातों पर विचार करेंगे; परन्तु पाठकोंसे बहुत कुछ आशा है। वे ही इस बातका फैसला करेंगे कि वास्तवमें पद्मनन्दि और विनयसेन सेनसंघके आचार्य थे या नहीं। इस विषयमें अब मैं आगे और कुछ न लिखूँगा।

भट्टाकलङ्कदेव ।

श्रीमद्भट्टाकलङ्कस्य पातु पुण्या सरस्वती !
अनेकान्तमरुन्मार्गे चन्द्रलेखायितं यथा ॥

—ज्ञानार्णव ।



दि गम्बरजैनसम्प्रदायमें समन्तभद्रस्वामीके बाद जितने नैयायिक और दार्शनिक विद्वान् हुए हैं उनमें अकलङ्कदेवका नाम सबसे पहले लिया जाता है। उनका महत्त्व केवल उनकी ग्रन्थ-

रचनामें ही नहीं है-उनके अवतारने जैनधर्मकी तात्कालिक दशा पर भी बहुत बड़ा प्रभाव डाला था। वे अपने समयके दिग्विजयी विद्वान् थे। जैनधर्मके अनुयायियोंमें उन्होंने एक नया जीवन डाल दिया था। यह उन्हींके जीवनका प्रभाव था जो उनके बाद ही कर्नाटक प्रान्तमें विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र, माणिक्यनन्दि, वादिसिंह, कुमारसेन जैसे बीसों तार्किक विद्वानोंने जन्म लेकर जैनधर्मको बौद्धादि प्रबल परवादियोंके लिए अजेय बना दिया था। उनकी ग्रन्थरचयिताके

रूपमें जितनी प्रसिद्धि है उससे कहीं अधिक प्रसिद्धि वाग्मी वक्ता या वादीके रूपमें थी । उनकी वक्तृत्वशक्ति या सभामोहिनी शक्तिका उपमा दी जाती है । महाकवि वादिराजकी प्रशंसामें कहा गया है कि वे सभामोहन करनेमें अकलङ्कदेवके समान थे ।

प्रसिद्ध विद्वान् होनेके कारण अकलङ्कदेव 'भट्टाकलङ्क' के नामसे प्रसिद्ध थे । भट्ट उनकी एक तरहकी पदवी थी । 'कवि' की पदवीसे भी वे विभूषित थे । यह एक आदरणीय पदवी थी जो उस समय प्रसिद्ध और उत्तम लेखकोंको दी जाती थी । लघु समन्तभद्र और विद्यानन्दने उनको 'सकलतार्किकचक्रचूड़ामणि' विशेषण देकर स्मरण किया है । अकलङ्कचन्द्रके नामसे भी उनकी प्रसिद्धि है ।

अकलङ्कदेवको कोई जिनदास नामक जैनब्राह्मण और जिनमती

१ सदसि यदकलङ्कः कर्तिने धर्मकीर्तिः

वचसि सुरपुरोध्या न्यायवादेऽक्षपादः ।

इति समयगुरुणामेकतः संगतानां

प्रतिनिधिरिव देवो राजते वादिराजः ॥

(Vide Ins No. 39. Nagar taluy by mr. Rice.)

२ कविशब्दकी परिभाषाके लिए देखो डा० भाण्डारकरकी १८८३-८४ की हस्तालिखित संस्कृत ग्रन्थोंकी रिपोर्ट, पृष्ठ १२२ । न्यायकुमुदचन्द्रोदयके कर्ता प्रभाचन्द्रको भी 'कवि' की पदवी प्राप्त थी, यद्यपि वे किसी काव्यके रचयिता नहीं हैं ।

३ अकलङ्कचन्द्र नामके एक भट्टारक भी हो गये हैं ।

ब्राह्मणीका पुत्र और कोई पुरुषोत्तम मंत्री तथा पद्मावती मंत्रिणीका पुत्र बतलाते हैं; परन्तु ये दोनों ही नाम कथाकारोंके गढ़े हुए जानड़े पड़ते हैं—वे वास्तवमें राजपुत्र थे । उनके राजवार्तिकालंकार नामक प्रसिद्ध ग्रन्थके प्रथम अध्यायके अन्तमें लिखा है कि वे ‘लघुहव्व’ नामक राजाके पुत्र थे:—

जीयाच्चिरमलङ्कब्रह्मा लघुहव्वचृपतिवरतनयः ।

अनवरतनिखिलविद्वज्जननुतविद्यः प्रशस्तजनहृद्यः ॥

और इसमें किसी तरहके सन्देहके लिए अवकाश नहीं है ।

अकलङ्कदेवका जन्मस्थान कौन है, इसका पता नहीं चलता । आराधनाकथाकोशके कर्त्ताने उनका जन्मस्थान मान्यखेट बतलाया है; परन्तु उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता । क्योंकि उस समयके मान्यखेटके राजाओंकी जो शृङ्खलाबद्ध नामावली मिलती है उसमें ‘लघुहव्व’ नामक राजाका नाम नहीं है; संभवतः वे मान्यखेटके आसपासके कोई माण्डलिक राजा होंगे । एक बार वे राजा साहसतुंग या शुभतुंगकी राजधानी मान्यखेटमें आये थे, इसका उल्लेख मिलता है, शायद इसी कारण कथाकोशके कर्त्ताने उनका जन्मस्थान मान्यखेट बतलाया है । कथाकोशकारको यह मालूम न था कि वे राजपुत्र थे—मंत्रीपुत्र समझकर ही उन्होंने ऐसा लिख दिया जान पड़ता है । ‘राजावलीकथे’ में अकलङ्कदेवका जन्मस्थान ‘कांची’ (कांजीवरम्) बतलाया है । संभव है कि यह सही हो ।

कनड़ी भाषामें ' राजावलीकथे ' नामका एक ग्रन्थ है । इसमें जैन इतिहासकथाओंका संग्रह है । ईसाकी १९ वीं शताब्दिके प्रारंभमें देवचन्द्र नामक कविने मैसूर राजवंशकी ' देवीरम्भ ' नामक एक स्त्रीके लिए इस ग्रन्थकी रचना की थी । इस ग्रन्थके आधारसे राइस साहबने अपनी ' इन्स्क्रिप्शन्स एट श्रवणबेलगोला ' नामक प्रसिद्ध पुस्तकमें लिखा है कि अकलङ्कदेव सुधापुरके देशीयगणके आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए थे और यह स्थान उत्तर कनारामें है । इस समय नार्थकनारामें जो ' सोड ' नामका नगर है वही प्राचीन सुधापुर है । राइस साहबने विलसन साहबकी ' मैकेजी कलेक्शन ' (Mccke-nzie collection) नामक पुस्तककी प्रस्तावनाके आधारेसे यह भी लिखा है कि पोनतग (Pontaga) के बौद्धकालिजमें अकलङ्कदेवने शिक्षा पाई थी और यह स्थान टिवटूरके निकट बतलाया जाता है ।

अकलङ्कदेवके विषयमें जो कई कथायें हैं उनके अनुसार वे जन्मसे ब्रह्मचारी रहे और विद्या प्राप्त करके दिगम्बराचार्यके पदको प्राप्त हो गये । विद्याकी प्राप्तिमें उन्होंने बहुत कष्ट उठाये । वे किसी बौद्धविद्यालयमें भी पढ़े थे । वे देवसंघके आचार्य बतलाये जाते हैं । देशीयगण जिसका उल्लेख देवचन्द्रने किया है इसी संघका एक गच्छ है । पर इसके लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता । अकलङ्कदेवने स्वयं अपने ग्रन्थोंमें अपने संघका उल्लेख नहीं किया; अपनी गुरुपरम्परा तो बड़ी बात है अपने गुरु तकका भी वे कहीं उल्लेख नहीं करते हैं । मंगराज कविका शक १३९९ का लिखा हुआ एक

विस्तृत शिलालेख है। उससे मालूम होता है कि ये नन्दिसेन आदि चारों संघ अकलङ्कदेवके बाद हुए हैं*। अभी तक अकलंकदेवसे पहलेके बने हुए जितने ग्रन्थ प्राप्य हुए हैं— भगवतीआराधना, पद्मपुराण, जिनशतक (समन्तभद्रकृत), आदि तथा उनके समकालीन विद्वान् विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र, माणिक्य-नन्दि आदिके जितने ग्रन्थ हैं उनमें किसीमें भी इन संघोंका उल्लेख नहीं मिलता है। इससे भी मंगराजकविके कथन पर विश्वास करनेकी इच्छा होती है कि उस समय नन्दि देव आदि संघ नहीं थे और अकलङ्कदेव किसी एक संघके नहीं किन्तु सम्मिलित दिगम्बर-जैनसंघके आचार्य्य थे। पर इस प्रश्न पर अभी बहुत कुछ छान-वीन करनेकी आवश्यकता है। क्योंकि श्रुतावतार कथामें लिखा है कि अकलंकदेवसे बहुत पहले विक्रमकी प्रथम शताब्दिके लगभग

* ततः परं शास्त्रविदां मुनीनामग्रेसरो भूदकलंकसूरिः ।

मिथ्यान्धकारस्थगिताखिलार्थाः प्रकाशिताः

यस्य वचोमयूखैः ॥ १८ ॥

तस्मिन्गते स्वर्गभुवं महर्षौ दिवःपतिं नर्तुमिव प्रकृष्टां ।

तदन्वयोद्भूतमुनीश्वराणां बभूवुरित्थं भुवि संघभेदाः ॥

स योगिसंघश्चतुरः प्रभेदानासाद्यभूयानविरुद्धवृत्तान् ।

ब्रभावयं श्रीभगवान्जिनेन्द्रश्चतुर्मुखानीव मिथस्समानि ॥१९॥

देवनन्दिसिंहसेनसंघभेदवर्तिनां

देशभेदतः प्रबोधभाजिदेवयोगिनाम् ।

वृत्ततः समस्ततो विरुद्धधर्मसेविनां

मध्यतः प्रसिद्ध एष नन्दिसंघ इत्यभूत् ॥ २० ॥

अर्हद्वलि आचार्यने इन चारों संघोंकी स्थापना की थी । इस बातका उल्लेख और भी कई स्थानोंमें पाया जाता है ।

अकलङ्कदेव बड़े भारी नैयायिक और दार्शनिक विद्वान् हुए हैं । उनकी सबसे अधिक प्रसिद्धि इस विषयमें है कि उन्होंने अपने पाण्डित्यसे बौद्धविद्वानोंको पराजित करके जैनधर्मकी प्रतिष्ठा स्थापित की थी । उनका एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ राजा हिमशीतलकी सभामें हुआ था । हिमशीतल पल्लववंशका राजा था और उसकी राजधानी कांची (कांजीवरम्) में थी । वह बौद्ध था । इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है । यह शास्त्रार्थ ७ दिन तक, किसीके मतसे १७ दिन तक और आराधनाकथाकोशके कर्त्तिके मतसे छह महीने तक हुआ था ! इसमें जैनधर्मको बड़ी भारी विजय प्राप्त हुई और राजा हिमशीतलकी आज्ञासे बौद्ध लोग सीलोनके 'कैंडी' नामक नगरको निर्वासित कर दिये गये । विलसन साहबने भी इस कैंडिके निर्वासित होनेकी बातका उल्लेख किया है । बौद्धोंके साथ शास्त्रार्थ होनेकी तथा उनके जीतनेकी घटनाका उल्लेख श्रवणबेलगोलाकी मल्लिषेणप्रशस्तिमें इस प्रकार किया है:—

तारा येन विनिर्जिता घटकुटीशूदावतारा सभं
बौद्धैर्यो धृतपीडपीडितकुट्टदेवार्थसेवाञ्जलिः ।
प्रायश्चित्तमिवांघ्रिवारिजरजः स्नानं च यस्याचर-
द्दोषाणां सुगतः स कस्य विषयो देवाकलङ्कः कृती ॥

चूणिः । यस्येदमात्मनोऽनन्यसामान्यनिरवद्यविभवोपवर्णनमाकर्ष्यते:—

राजन्साहसतुङ्ग सन्ति बहवः श्वेतातपत्रा नृपाः
किं तु त्वत्सदृशा रणे विजयिनस्त्यागोन्नता दुर्लभाः ।
तद्वत्सन्ति बुधा न सन्ति कवयो वादीश्वरा वाग्मिनो
नानाशास्त्रविचारचातुराधियः काले कलौ मद्भिधाः ॥

राजन्सर्वारिदर्पप्रविदलनपदुस्त्वं यथात्र प्रसिद्ध-
स्तद्वत्ख्यातोऽहमस्यां भुवि निखिलमदोत्पाटने पण्डितानां ।
नोचेदेषोऽहमेते तव सदसि सदा सन्ति सन्तो महान्तो
वक्तुं यस्यास्ति शक्तिः स वदतु विदिताशेषशास्त्रो यदि स्यात्
नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं
नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्यबुद्ध्या मया ।
राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो
बौद्धौघान्सकलान्विजित्य सुगतः पादेन विस्फोटितः ॥

भावार्थ—जिसने घड़ेमें बैठकर गुप्त रूपसे शास्त्रार्थ करनेवाले तारादेवीको बौद्ध विद्वानोंके सहित परास्त किया । (दूसरे चरणार्थ स्पष्ट नहीं होता) और जिसके चरणकमलोंकी रजमें सजकरके बौद्धोंने अपने दोषोंका प्रायश्चित्त किया, उस महात्मा को लंकदेवकी प्रशंसा कौन कर सकता है ?

सुनते हैं उन्होंने एकबार अपने अनन्य साधारण गुणोंका तरह वर्णन किया था—

“ साहसतुंग (शुभतुंग) नरेश, यद्यपि सफेद छत्रके धारण करनेवाले राजा बहुत हैं परन्तु तेरे समान रणविजयी और राजा और नहीं । इसी तरह पण्डित तो और भी बहुतसे

परन्तु मेरे समान नाना शास्त्रोंका जाननेवाला पण्डित, कवि, वादीश्वर और वाग्मी इस कलिकालमें और कोई नहीं ।

“ राजन्, जिस तरह तू अपने शत्रुओंका अभिमान नष्ट करनेमें चतुर है उसी तरह मैं भी पृथ्वीके सारे पण्डितोंका मद उतार देनेमें प्रसिद्ध हूँ । यदि ऐसा नहीं है तो तेरी सभामें जो अनेक बड़े बड़े विद्वान् मौजूद हैं उनमेंसे किसीकी शक्ति हो तो मुझसे बात करे ।

“ मैंने राजा हिमशीतलकी सभामें जो सारे बौद्धोंको हराकर तारादेवीके घड़ेको फोड़ डाला, सो यह काम मैंने कुछ अहंकारके वशवर्ती होकर नहीं किया, मेरा उनसे द्वेष भी नहीं है; किन्तु नैरात्म्य (आत्मा कोई चीज नहीं है क्षणस्थायी है) मतके प्रचारसे लोग नष्ट हो रहे थे, उन पर मुझे दया आ गई और इसके कारण मैंने बौद्धोंको पराजित किया ।”

समयविचार ।

अकलंकदेवने यद्यपि अपने किसी ग्रन्थमें अपना समय प्रकट नहीं किया है; परन्तु कितने ही प्रमाणोंसे उनका समय निश्चित किया जासकता है—

१ उपर्युक्त मल्लिषेणप्रशस्तिके श्लोकोंसे जान पड़ता है कि वे साहसतुंगकी सभामें उपस्थित हुए थे और साहसतुंग राष्ट्रकूट या राठोर-वंशका राजा था । इसका प्रसिद्ध नाम शुभतुंग या कृष्णराज था । विक्रमसंवत् ८४० (शकसंवत् ७०९) में जब जिनसेनका हरिवंश-

पुराण बना था उस समय इस कृष्णराजका बेटा इन्द्रायुध गोविन्द द्वितीय राज्य करता था । इससे मालूम होता है कि कृष्णराजका राज्यकाल इसके पहले था । डा० भण्डारकरने अपने दक्षिणके इतिहासमें लिखा है कि इस राजाने संवत् ८१० से ८३२ तक राज्य किया है । इससे मालूम होता है कि अकलंकदेव ८१० से ८३२ तकके किसी समयमें जीवित थे ।

२ हरिवंशपुराण वि० सं ८४० में बना है । उसमें कुमारसेनका उल्लेख किया गया है और कुमारसेनका उल्लेख विद्यानन्दस्वामीने अपनी अष्टसहस्रीके अन्तमें किया है । लिखा है कि उनकी सहायतासे हमारा यह ग्रन्थ वृद्धिको प्राप्त हुआ । अकलङ्कदेव विद्यानन्दसे पहले हैं, क्योंकि उनके अष्टशतीभाष्य पर ही अष्टसहस्री लिखी गई है । इससे भी ज्ञात होता है कि अकलंकदेव संवत् ८४० के ही पहले हो चुके हैं । आश्चर्य नहीं कि हरिवंशकी रचनाके समय उनका अस्तित्व न हो ।

३ अष्टसहस्रीमें प्रसिद्ध वेदान्ती विद्वान् कुमारिलभट्टका 'भट्ट' नामसे कई जगह उल्लेख किया गया है । कुमारिल भट्टका समय संवत् ७९७ से ८१७ तक निश्चित है । अतएव विद्यानन्दि स्वामी उसीके समयमें अथवा उससे कुछ पीछे हुए होंगे और अकलंक विद्यानन्दसे पहले हुए हैं—अतएव उनका समय विक्रमकी आठवीं शताब्दिका चतुर्थ पाद और नववीं शताब्दिका प्रारंभ समझना चाहिए ।

४ प्रो० के.बी. पाठक और डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण आदि विद्वानोंने भी उन्हें ईस्वीसन् ७९० अर्थात् विक्रम संवत् ८०७ के लगभगका विद्वान् निश्चित किया है ।

समसामयिक विद्वान् और शिष्य ।

भगवान् अकलंकदेवके समयमें जैनविद्वानोंका ज्वार आया था । उस समय इतने अधिक विद्वान् विशेष करके नैयायिक विद्वान् हुए थे जितने कि अन्य किसी समयमें नहीं हुए । ज्यों ज्यों प्राचीन ग्रन्थोंकी तथा शिलालेखोंकी छानबीन की जाती है त्यों त्यों उस समयके अनेक बड़े बड़े विद्वानोंके नाम मालूम होते जाते हैं ।

अकलंकदेवके गुरु कौन थे, इसका पता नहीं लगता । यह हम पहले ही लिख चुके हैं । हाँ, उनके पुष्पषेण नामक सतीर्थ या गुरुभाईका पता मल्लिषेणप्रशस्तिसे लगता है:—

श्रीपुष्पषेणमुनिरेव पदं महिम्नो
देवंः स यस्य समभूत्स भवान्सधर्मा ।
श्रीविभ्रमस्य भवनं ननु पद्ममेव
पुष्पेषु मित्रमिह यस्य सहस्रधामा ॥

इस पद्यके अभिप्रायसे जान पड़ता है कि वे बहुत बड़े विद्वान् होंगे ।

माणिक्यनन्दि, विद्यानन्द और प्रभाचन्द्र ये तीनों विद्वान् अकलंकदेवके समकालीन हैं । इनमेंसे प्रभाचन्द्र तो अपने न्याय-कुमुदचन्द्रोदयके प्रथम अध्यायमें निम्नलिखित श्लोकसे यह प्रकट

१ 'देव' पद अकलङ्कदेवको सूचित करता है । इसका पूर्ववर्ती श्लोकसे स्पष्टीकरण होता है ।

करते हैं कि उन्होंने अकलंकदेवके चरणोंके समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त किया था:—

बोधः कोप्यसमः समस्तविषयं प्राप्याकलङ्कं पदं,
जातस्तेन समस्तवस्तुविषयं व्याख्यायते तत्पदम् ।
किं न श्रीगणभृज्जिनेन्द्रपदतः प्राप्तप्रभावः स्वयं
व्याख्यात्यप्रतिमं वचो जिनपतेः सर्वात्मभाषात्मकम् ॥

उन्होंने अपने प्रमेयकमलमार्तण्डमें आचार्य माणिक्यनन्दिका उल्लेख किया है:—

गुरुः श्रीनन्दिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जनः ।
नन्दताद्वूरतैकान्तरजो जैनमताणवः ॥ ३ ॥

और इन माणिक्यनन्दिको नमस्कार करते हुए अनन्तवीर्यने प्रमेयरत्नमालावृत्तिके प्रारंभमें कहा है:—

अकलङ्कवचोम्भोधेरुद्धे येन धीमता ।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ॥

अर्थात् जिसने अकलङ्कके शास्त्ररूपी समुद्रसे न्यायविद्यामृतका उद्धार किया उस माणिक्यनन्दिको नमस्कार करता हूँ । इससे मालूम होता है कि माणिक्यनन्दि अकलंकदेवके ही समयमें हुए हैं । उन्हें पीछे इस कारण नहीं कह सकते कि प्रभाचन्द्रने जो अकलंकके पास बैठकर पढ़े हैं माणिक्यनन्दिको गुरुरूपसे स्मरण किया है ।

स्याद्वादविद्यापति विद्यानन्दि भी अकलंकदेवके समकालीन हैं । क्योंकि प्रभाचन्द्रने अपने प्रमेयकमलमार्तण्डमें अकलंकके साथ उनका भी स्मरण किया है:—

सिद्धं सर्वजनप्रबोधजननं सद्योऽकलङ्काश्रयं
विद्यानन्दसमन्तभद्रगुणतो नित्यं मनोनन्दनम् ।
निर्दोषं परमागमार्थविषयं प्रोक्तं प्रमालक्षणम्
युक्त्या चेतसि चिन्तयन्तु सुधियः श्रीवर्द्धमानं जिनम् ॥

और विद्यानन्दने अपना अष्टसहस्रीग्रन्थ अकलंकदेवकी अष्टशती पर ही रचा है:—

श्रीमदकलङ्कशशधरविवृतां समन्तभद्रोक्तिमत्र संक्षेपात् ।
परमागमार्थविषयामष्टसहस्रीं प्रकाशयति ॥

इस तरह इन विद्वानोंका क्रम इस तरह बनता है:—अकलंकदेव, माणिक्यनन्दि, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र । इनमें वृद्धत्वका मान अकलङ्कदेवको ही प्राप्त है । माणिक्यनन्दिको विद्यानन्दसे पहले कहनेका कारण यह है कि उनके ग्रन्थमें विद्यानन्दका कहीं उल्लेख नहीं है और प्रभाचन्द्रने उन्हें अपना गुरु बताया है ।

कुमारसेन और वादीभसिंह भी उसी समयके नामी विद्वानोंमेंसे हैं । कुमारसेनका उल्लेख विद्यानन्दने अष्टसहस्रीके अन्तमें किया है और कहा है कि इस ग्रन्थकी वृद्धि उनकी सहायतासे हुई है । इन्हीं कुमारसेनकी प्रशंसामें हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेन कहते हैं:—

अकूपारं यशो लोके प्रभाचन्द्रोदयोज्ज्वलम् ।

गुरोः कुमारसेनस्य विचरत्यजितात्मकम् ॥ ३८ ॥

मल्लिषेणप्रशस्तिमें उन्हें बहुत ही बड़ा प्रभावशाली विद्वान् बतलाया है:—

उदेत्य सम्यग्दिशि दक्षिणस्यां कुमारसेनो मुनिरस्तमाप ।

तत्रैव चित्रं जगदेकभानोस्तिष्ठत्यसौ तस्य तथाप्रकाशः ॥

वादीभसिंहका उल्लेख अष्टसहस्रीकी उत्थानिकामें 'श्रीमता वादीभसिंहेनोपललितामासमीमांसाय' आदि वाक्य देकर किया है। इन्हीं वादीभसिंहको जिनसेनस्वामीने 'वादिंसिंह' कहकर स्मरण किया है—

कवित्वस्य परा सीमा वाग्मितस्य परं पदम् ।

गमकत्वस्य पर्यन्तो वादींसिंहोर्च्यते न कैः ॥

वीरसेन स्वामी भगवज्जिनसेनके गुरु थे। यद्यपि उनकी सैद्धांतिक रूपमें ही विशेष प्रसिद्धि है तथापि वे नैयायिक भी बड़े भारी हुए हैं। अष्टसहस्रीके अन्तमें उनका तार्किकरूपमें ही उल्लेख मिलता है। गुणभद्रने भी उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें कहा है:—

तत्र वित्रासिताशेषप्रवादिमद्वारणः ।

वीरसेनाग्रणीर्वीरसेनभट्टारको बभौ ॥

उसी समय परवादिमल्लदेव नामके भी एक तार्किक विद्वान् हुए हैं। उनका भी कृष्णराज या साहसतुंगके समक्ष उपस्थित होनेका उल्लेख मल्लिषेणप्रशस्तिमें मिलता है:—

घटवाद्घटाकोटिकोविदं कोविदां प्रवाक् ।

परवादिमल्लदेवो देव एव न संशयः ॥

येनेयमात्मनामधेयनिरुक्तिरुक्ता नाम पृष्ठवन्तं कृष्णराजं प्रति—

गृहीतपक्षादितरः परः स्यात्तद्वादिनस्ते परिवादिन स्युः ।

तेषां हि मल्लः परवादिमल्लस्तन्नाम मन्नाम वदन्ति सन्तः ॥

एक श्रीपाल नामके नामी विद्वान् भी उसी समय हुए हैं। जिनसेनस्वामीने इनका उल्लेख अकलङ्क और विद्यानन्दके ही साथ साथ किया है। जयधवलसिद्धान्तकी वीरसेनीया टीका इन्हीं

श्रीपालचार्यकी सम्पादन की हुई है । एक कुमारनन्दिभट्टारक भी उसी समय हुए हैं जिनके किसी ग्रन्थका एक श्लोक प्रमाणपरीक्षामें विद्यानन्दस्वामीने उद्धृत किया है । इस तरह अकलंकदेवके समयमें अनेक विद्वानोंके द्वारा जैनसम्प्रदाय प्रभावशाली बन रहा था ।

ग्रन्थरचना ।

१ अष्टशती—अकलंकदेवका यह सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है । समन्तभद्रस्वामीके देवागमका यह भाष्य है ।

२ राजवार्तिक—यह उमास्वामीके तत्त्वार्थसूत्रका भाष्य है । इसकी श्लोकसंख्या १६००० है ।

३ न्यायविनिश्चय—न्यायका प्रामाणिक ग्रन्थ समझा जाता है । आराके सिद्धान्तभवनमें इसकी एक वृत्ति वादिराजसूरिकृत मौजूद है ।

४ लघीयस्त्रयी—प्रभाचन्द्रका न्यायकुमुदचन्द्रोदय इसी ग्रन्थका भाष्य है ।

५ बृहत्त्रयी—बृहत्त्रयी भी शायद इसीका नाम है । लघीयस्त्रयी और बृहत्त्रयी ये दोनों ग्रन्थ कोल्हापुरमें श्रीयुत पं० कल्लापा भरमापा निटवेके पास मौजूद हैं ।

६ न्यायचूलिका नामक ग्रन्थका भी उल्लेख मिलता है कि वह अकलंकदेवका बनाया हुआ है ।

७ अकलंकस्तोत्र या अकलंकाष्टक भी उन्हींका बनाया हुआ बातलया जाता है; परन्तु बहुतोंको इस विषयमें सन्देह है ।

अकलंकप्रायश्चित्त और अकलंकप्रतिष्ठापाठ भी अकलंकदेवके नामसे प्रसिद्ध हैं; परन्तु यह भ्रम है। प्रायश्चित्तको हमने स्वयं देखा है। ऐसे निःसार ग्रन्थोंको अकलंकदेवका बतलाना उनका अपमान करना है। प्रतिष्ठापाठ भी उनका नहीं है। आवश्यकता होने पर यह सिद्ध किया जा सकता है। उनके एक स्वरूपसम्बोधन नामक ग्रन्थका उल्लेख डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषणने किया है; मालूम नहीं, वह प्राप्य है या नहीं।

अकलंकस्वामीके विषयमें जितनी बातें छानबीनसे मालूम हो सकीं वे सब लिखी जा चुकीं; अब हम उनके जीवनचरितके विषयमें कुछ विचार करके—जो कि कथाग्रन्थोंमें मिलता है—इस लेखको समाप्त करेंगे।

कथाओं पर विचार।

आराधनाकथाकोशमें अकलंकदेवके विषयमें जो कथा लिखी है उसका सारांश यह है:—

“मान्यखेट (मलखेड़) नगरमें शुभतुंग नामका एक राजा था। उसके मंत्रीका नाम पुरुषोत्तम था। पुरुषोत्तमकी स्त्री पद्मावतीके अकलंक और निकलंक नामके दो पुत्र हुए। अष्टान्हिका उत्सवमें एकबार मंत्री अपनी भार्या और पुत्रों सहित रविगुप्त नामक मुनिकी वन्दना करनेके लिए गये। वहाँ पुरुषोत्तम और पद्मावतीने आठ दिनके लिए ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया और साथ ही कौतुकवश अपने दोनों पुत्रोंको भी ब्रह्मचर्य दिला दिया। कुछ

दिनोंके बाद जब पिताने व्याह करनेका उद्यम किया तब पुत्रोंने अपने उक्त ब्रह्मचर्यव्रतकी बात कहकर साफ़ इंकार कर दिया और सब काम छोड़कर विद्याभ्यासमें चित्त लगा दिया । जब विद्वान् हो गये तब इन्हें बौद्धशास्त्रोंके अध्ययनकी इच्छा हुई । परन्तु उस समय मान्यखेटमें कोई बौद्धधर्मका ज्ञाता न था, इसलिए ये वहाँसे चल दिये और 'महाबोधि' नामक किसी स्थानमें अज्ञ विद्यार्थियोंका रूप धारण करके बौद्धशास्त्र पढ़ने लगे ।

“एक दिन बौद्धगुरु जैनधर्मके सप्तभंगी सिद्धान्तका स्वरूप बतला रहा था । पाठ अशुद्ध था, इस कारण उससे पदार्थ स्पष्ट करते न बना और वह किसी बहानेसे बाहर चला गया । इतनेमें अकलंकदेवने उस पाठको ठीक कर दिया । गुरुने आकर पढ़ा तो अभिप्राय स्पष्ट हो गया । इससे उसे सन्देह हो गया कि यहाँ कोई जैनधर्मका उपासक रूपे वेपसे पढ़ रहा है । उसका पता लगाना चाहिए । पहले शपथ आदि कराके सबसे पूँछा; परन्तु जब पता न चला तब एक जैनप्रतिमा मँगवाकर सब विद्यार्थियोंसे कहा कि इसको लाँघ जाओ । सब छात्रोंके लाँघ जाने पर अकलंककी बारी आई । उन्होंने एक चतुर्गई की—सूतका एक बारीक धागा प्रतिमा पर डाल दिया और तब मनमें यह संकल्प करके कि यह सावरणा मूर्ति है वे उसे चट लाँघ गये । जब इस युक्तिसे कुछ पता न चला तब एक दिन आधीरातके समय जहाँ सब छात्र सोते थे, एकाएक काँसेके हजारों वर्तन जोरसे पटक दिये जिससे घबड़ाकर सब छात्रोंके मुँहसे उनके इष्टदेवका नाम निकल पड़ा । इस समय अकलंक निकलंकके

मुँहसे ' णमोकार मंत्र ' निकल पड़ा और वह बौद्ध गुरुके गुप्त-चरने सुन लिया। दोनों भाई पकड़ लिये गये और जब तक दिन न निकल आवे तबतकके लिए एक सतखने महलकी छतपर रख दिये गये। प्राण संकटमें आ पड़े। बड़े भाईके पास एक छतरी थी। सोच विचारकर दोनों उसके सहारेसे कूद पड़े और उसी समय भाग दिये। सबेरे खोज की गई और बहुतसे सवार इनके पीछे दौड़ा दिये गये। निकलंकने दूरसे सवारोंको आते देखा, तब उसकी प्रेरणासे अकलंकने तो अपनेको एक तालाबमें कमलोंके भीतर छुपा लिया; पर निकलंकसे भागनेके सिवाय और कुछ न बन पड़ा। एक घोबी भी डरके मारे उसके साथ भागने लगा। कुछ समयमें सवारोंने इन दोनोंको पकड़ लिया और दोनोंका सिर उतार लिया—बेचारा घोबी अकलंकके धोखेमें मार डाला गया।

“ कलिगदेशके रत्नसंचयपुरनगरमें हिमशीतल नामका राजा था। उसकी रानी मदनसुन्दरी जिनधर्मानुरागिणी थी। फाल्गुनके अष्टाहिका पर्वमें वह भगवानका रथ निकालना चाहती थी; परन्तु संघश्री नामक बौद्धाचार्यने उसमें रुकावट डाल दी। कहा कि जबतक कोई जैनविद्वान् शास्त्रार्थमें विजय प्राप्त न कर ले तबतक जिनदेवका रथ नहीं निकल सकता। रानीको बड़ी चिन्ता हुई। वहाँ आसपासमें कोई जैनविद्वान् न था जो बुलवा लिया जाता। निदान और कोई उपाय न देखकर रानी नमस्कारमंत्रका जाप करने लगी। फल यह हुआ कि पद्मावती देवीने प्रकट होकर एक विद्वानके शीघ्र ही वहाँ आनेका शुभसंवाद सुनाया और दूसरे

ही दिन सबेरे अकलङ्कदेव वहाँ जा पहुँचे । इससे रानीको बहुत ही संतोष हुआ ।

“ अब संघश्रीके साथ हिमशीतलकी सभामें अकलंकदेवका शास्त्रार्थ होने लगा । संघश्रीने अपने धर्मके और भी अनेक विद्वान् बुला लिये । यह शास्त्रार्थ छह महीनेतक हुआ । पीछे पद्मावती देवीके कहनेसे मालूम हुआ कि संघश्री स्वयं शास्त्रार्थ नहीं करता है, किन्तु उसकी इष्टदेवता तारा परदेकी ओटमेंसे बोला करती है और इसी लिए वादका अन्त नहीं आता है । यह जाननेके दूसरे ही दिन अकलंकदेवने परदेको अलग करके उस घड़ेको लातकी ठोकरसे फोड़ दिया जिसमें तारादेवी स्थापित थी और संघश्रीको पराजित करके जैनधर्मकी अच्छी प्रभावना की । रानीकी इच्छा पूर्ण हुई; उसने भगवान्का रथ खूब उत्साहके साथ निकाला । ”

आराधना कथाकोश जिसमें यह कथा लिखी है नेमिदत्त ब्रह्मचारीका बनाया हुआ है । ये मल्लिभूषणभट्टारकके शिष्य थे और विक्रम संवत् १९७९ के लगभग इनके अस्तित्वका पता लगता है । उन्होंने लिखा है कि मैंने प्रभाचन्द्र भट्टारकके गद्यकथाकोशको पद्यमें परिवर्तन करके यह ग्रन्थ बनाया है ।

प्रभाचन्द्रका गद्य कथाकोश बहुत करके उन्हीं प्रभाचन्द्रका बनाया हुआ है जिनके पट्ट पर पद्मनन्दि भट्टारक सं० १३८९ में बैठे थे । अर्थात् अकलंकदेवकी यह कथा वि० की चौदहवीं शताब्दिकी लिखी हुई है । इसके पहले वह किस रूपमें थी और उसका मूल क्या है इसके जाननेका कोई साधन हमारे पास नहीं ।

राइससाहबने देवचन्द्रकी ' राजावलीकथे ' के आधारसे—जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है—और दूसरी कई कथाओंके आधारसे अकलंकदेवका वृत्तान्त इसप्रकार लिखा है—

“ जिस समय कांचीमें बौद्धोंने जैनधर्मकी प्रगतिको बिल्कुल रोक दिया था उस समय जिनदास नामक जैनब्राह्मण (अर्हदिद्वज) के यहाँ उसकी स्त्री जिनमतीसे, अकलङ्क और निकलङ्क नामके दो पुत्र थे । वहाँ पर उनके सम्प्रदायका कोई पढ़ानेवाला नहीं था—इसलिए इन दोनों बालकोंने गुप्तरतीसे भगवद्दास नामके बौद्ध गुरुसे—जिसके मठमें पाँचसौ चेले थे—पढ़ना शुरू किया । एक कथाकार कहता है कि उन्होंने ऐसी असाधारण शीघ्रताके साथ उन्नतिकी कि गुरुको सन्देह हो गया और उसने यह जाननेका निश्चय किया कि वे कौन हैं । अतः एक रात्रिको जब वे सोते थे उस बौद्धगुरुने बुद्धका दाँत उनकी छाती पर रख दिया, इससे वे बालक ' जिन सिद्ध ' कहते हुए एकदम उठ खड़े हुए और इससे गुरुको मालूम हो गया कि वे जैन हैं । दूसरी कथाके आधार पर यह है कि उन बालकोंने एक दिन—जब कि गुरु कुछ मिनटके लिए उनसे अलग हुआ था—एक हस्तलिखित पुस्तकमें ये शब्द जोड़ दिये कि ' सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ' और इस बातकी छानबीन करने पर गुरुको मालूम हो गया कि वे जैन हैं दोनों कथाओंमें चाहे जो सच्ची हो आखिर नतीजा यह हुआ कि उनके मारे जानेका निश्चय किया गया और वे दोनों भाग निकले । निकलंकने अपना पकड़ा जाना और माराजाना स्वीकार किया ताकी

उसके भाईको पीछा करनेवालोंसे बचनेका अवसर मिल जाय । अकलंकने एक धोबीकी सहायतासे—जिसने उसको अपने कपड़ोंकी गठरीमें छिपा लिया—अपनेको बचा लिया और दीक्षा लेकर सुधापुरके देशीय गणका आचार्यपद शोभित किया ।

“ इस समय अनेक मतोंके विद्वान् आचार्य बौद्धोंसे वादविवादमें हार खाकर दुखी हो रहे थे उनमेंसे वीरशैव सम्प्रदायके आचार्य सुधापुरमें अकलङ्कदेवके पास आये और उनसे उन्होंने सब हालकहा । इस पर अकलङ्कदेवने वहाँ जाने और बौद्धों पर विजय प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया । अकलंकने अपनी मयूरपिच्छिको छुपाकर, जिससे वे जैनमती जाने जाते—बौद्धोंको यह विश्वास दिलानेकी योजना की कि वे शैव हैं और इस ढंग पर उनको बादमें जीतकर पीछे उन्हें अपनी मयूरपिच्छि दिखला दी । इस पर बौद्ध लोग बहुत ही क्रुद्धित और उत्तेजित हुए । कांचीके बौद्धोंने जैनियोंका हमेशाके लिए अन्त कर डालनेके अभिप्रायसे अपने राजा हिमशीतलको इस बातके लिए उत्तेजित किया कि अकलङ्कको इस शर्तके साथ उनसे वाद करनेके लिए बुलाया जाय कि जो कोई वादमें हार जाय उसके सम्प्रदायके कुल मनुष्य कोल्हमें पिलवा दिये जायँ ! बौद्धोंकी तरफसे इस बड़े भारी वादयुद्धकी तैयारियोंका होना किसी कदर असामान्य है; परन्तु इस

१ वीरशैव सम्प्रदाय हैहय (कलचुरी) वंशीय राजा विज्जलके मंत्री 'बसव' ने विक्रम संवत् १२०० के लगभग स्थापित किया था । यह निश्चित है । वसवपुराणमें भी यही लिखा है । इससे अकलंकके समयमें वीरशैव मत नहीं हो सकता । यह कथालेखककी गड़न्त है ।

विषय पर जितनी कथायें हैं उन सबमें ऐसा ही बयान किया गया है। बौद्धोंने परदेकी ओटमें ताड़ी (नशा करनेवाला सुगंधित ताड़का रस) का मृत्कुंभ रक्खा और उसमें अपनी तारादेवीका आह्वान करके उसको उन सब पक्षोंका यथाक्रम उत्तर देनेके लिए प्रेरित किया जो अकलंककी तरफसे उठाये जायँ। कुछ कथाकारोंके मतसे यह वाद ७ दिन तक और कुछ के मतसे १७ दिन तक चलता रहा जिसमें अकलंकको कोई लाभ न पहुँचा। जब परिणामके लिए अकलङ्क बहुत ही उत्काण्ठित होने लगे तब कुष्माण्डिनी नामकी देवीने उन्हें स्वप्नमें दर्शन दिया और बतलाया कि यदि तुम अपने प्रश्नोंको प्रकारान्तरसे करो तो विजयी होजाआगे। अगले दिन ऐसा ही किया गया। घड़ेकी दैवीसे कोई उत्तर न बन सका और जैनोंकी जीत हो गई। तब अकलंकने उस परदेको टूट डाला और घड़ेको बाईं लातकी ठोकरसे फोड़ डाला। यह कथा सम्पूर्ण बातोंसे ऐसी संग्रथित है कि शिलालेखके अन्तिम शब्द 'सुगतः पादेन विस्फालितः' आम तौर पर 'स घटः पादेन विस्फोटितः' कहे जाते हैं। यह समझना कठिन है कि किस घटनाका ठीक ठीक होना खयाल किया जाय; परन्तु समस्त घटनायें सविस्तर हैं और उसी एक बातको बतला रही हैं। इस समस्त घटनाका परिणाम यह हुआ कि राजा हिमशीतलको उन समस्त प्रबन्धोंका हाल मालूम होगया जिनपर बौद्ध लोग भरोसा रखते थे और साथ ही यह देखकर कि एक हाथीने जो खुला

छोड़ा गया था बौद्धोंकी पुस्तकोंको पैरोंसे मथ डाला और जैनग्रन्थोंको अपनी सूँडसे उठाकर मस्तक पर रक्खा, उसने बौद्धोंको कोल्हूमें पिलवा देनेका हुकम दे दिया ! परन्तु अकलङ्ककी प्रार्थना पर बौद्धोंको न मारकर, वह इस बात पर सम्मत होगया कि बौद्धोंको एक दूर देशमें निर्वासित कर दिया जाय और इसलिए वे समस्त बौद्ध सीलोनके एक नगर कैंडीको निर्वासित कर दिये गये।*

‘राजावलीकथे’ के लिखे जानेका समय ईसाकी १९ वीं शताब्दी ऊपर लिखा जा चुका है । अर्थात् यह सबसे आधुनिक ग्रन्थ है । इसके सिवाय और जिन कथाग्रन्थोंके आधारसे राइस साहबने उक्त वर्णन लिखा है उनके विषयमें नहीं कहा जा सकता कि वे कबके बने हुए होंगे; पर यह निश्चय है कि आराधनाकथाकोशके समान ये सब कथायें भी दिगम्बर—जैन ग्रन्थकर्त्ताओंकी लिखी हुई हैं । इन्हें परस्पर—मिलाकर विचारशील पाठक यह समझ सकते हैं कि केवल श्रद्धाके वशवर्ती होकर कथाग्रन्थों पर सर्वथा विश्वास कर बैठना कितना बड़ा जोखिमका काम है ।

ये तो हुईं दिगम्बरी कथायें, अब इसी कथानकका अनुसरण करनेवाली एक श्वेताम्बरसम्प्रदायकी कथा भी सुन लीजिए । उसका सारांश नीचे दिया जाता है:—

“ हरिभद्रसूरिके हंस और परमहंसके नामके दो शिष्य थे । गृहस्थाश्रमके ये उनके भानजे थे । न्याय, व्याकरण, दर्शनका अध्ययन कर चुकनेके बाद इनकी इच्छा हुई कि हम बौद्धदर्शनका भी

* राइस साहबकी लिखी हुई इस कथाका अंश श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजीने अनुवाद करके भेजा है ।

रहस्य समझें और इसके लिए एक प्रसिद्ध बौद्धमठमें जाकर पढ़नेके लिए वे तैयार हो गये । यह मठ चित्रकूट या चित्तौड़से पूर्वकी ओर था । गुरुने इन्हें रोका; पर वह व्यर्थ हुआ । निदान ये बौद्ध वेष धारण करके बौद्धमठमें पढ़ने लगे और उन्होंने बहुत समय तक किसी पर भी यह प्रकट न होने दिया कि हम जैन हैं । इसी समय एक घटना ऐसी हुई जिससे इनके बौद्ध होनेमें लोगोंको शंका हो गई । इन्होंने एक पत्र पर जैनमतकी युक्तियोंके खण्डनका प्रतिखण्डन और दूसरे पर सुगतवादके दूषण लिख रक्खे थे । देवयोगसे एक दिन ये पत्र हवामें उड़ गये और किसी तरह बौद्धगुरुकी दृष्टिमें जा पड़े ।

“गुरुको सन्देह हो गया कि ये कोई अर्हदुपासक हैं, इस से वे इस बातकी जाँच करने लगे कि वास्तवमें ये जैन हैं या नहीं । इसके लिए उन्होंने विद्यार्थियोंके आनेके मार्गकी सीढियोंमें एक जैन-प्रतिमाका चित्र बनवा दिया । गुरुके पास जानेका और कोई मार्ग न था और इस मार्गसे जानेमें जिनप्रतिमाका अविनय करके जाना पड़ता था । हंस परमहंस समझ गये कि गुरुको हम दोनोंके विषयमें शंका हो गई है । अब क्या करना चाहिए ? बड़ी चिन्ता हो गई । उसी समय उन्हें एक युक्ति सूझ आई । खड़ी मिट्टीके टुकड़ेसे उन्होंने प्रतिमा पर तीन लकीरें खींच दी और तब उसे बुद्ध प्रतिमा मानकर वे उसके ऊपर पैर रखकर गुरुके पास चले गये ! (जिन प्रतिमा और बुद्धप्रतिमामें बहुत बड़ा भेद नहीं होता है; प्रायः एकसी होती हैं । बुद्धप्रतिमामें यज्ञोपवतिके तीन धागोंका चिह्न रहता है, पर यह जिनप्रतिमामें नहीं होता ।) इसके बाद एक दूसरी परीक्षा

की गई। जहाँ सब विद्यार्थी सोते थे वहाँ कई आदमी पहरे पर रख दिये और आधीरातको ढेरके ढेर वर्तनोंको जीनेसे पटककर चौंका देनेवाला शब्द किया जिसे सुनकर सब विद्यार्थी अपने अपने इष्टदेवका स्मरण करने लगे। उस समय हंस परमहंसने जिनदेवका स्मरण किया और वह पहरेदारोंने सुन लिया। इसके बाद दोनों भाई छत्रोंके सहारे छतसे कूदकर भागे और बौद्ध गुरुकी आज्ञासे १४४४ घुड़सवार उनके पकड़नेके लिए दौड़े। कुछ दूरीपर सामना हो गया, सो बड़ा भाई परमहंस जो लड़कर मारा गया और छोटा सूरपाल नामक राजाकी शरणमें चला गया। सबारोंने राजासे कहा कि हमारा अपराधी दे दो; परन्तु उसने देनेसे साफ़ इंकार कर दिया। बड़ी कठिनाईसे वह इस बात पर राजी हुआ कि हंससे शास्त्रार्थ कर लिया जाय। यदि उसमें यह हार जायगा तो हम इसे तुम्हें दे देंगे। शास्त्रार्थ हुआ और वह उसी तरह हुआ जैसा अकलंकदेवका राजा हिमशीतलकी राजधानीमें लिखा हुआ है।

“इसमें भी बौद्धमतकी देवी तारा घटमें बैठकर शास्त्रार्थ करती थी। वह अन्तमें जिनशासनदेवीके सुझानेसे पराजित कर दी गई और उसका घड़ा लातोंसे ठुकरा दिया गया। हंसकी जीत तो हो गई; पर उसकी विपत्तिका अन्त न आया। सूरपालके यहाँसे घरको जाते समय सबारोंने फिर पीछा किया। निदान बड़ी कठिनाईसे ये अपने गुरुके पास पहुँचे और गुरुको अपनी विपत्तिका और प्रिय भाईकी मृत्युका हाल सुनाते हुए तीव्र हार्द्रिक शोकके वेगमें छाती फट जानेसे मर गये। गुरु महाराजको अपने प्रिय शिष्योंके

मरनेका बहुतही शोक हुआ और इस कारण बौद्धोंके ऊपर उतका क्रोध भड़क उठा ! उन्होंने आकर्षिणी विद्याके बलसे उन सबारोंके खींचकर तप्ततेलकी कढ़ाईमें डालकर भस्म कर देना चाहा । जब यह बात हरिभद्रसूरिके गुरुको मालूम हुई; तब उन्होंने उनके पास क्रोधोपशमनार्थ कुछ गाथायें लिखकर भेजीं जिससे वे शान्त हो गये ।

“ उन्हें अपनी क्रोधभावनाका बड़ा पश्चात्ताप हुआ औ इन १४१४ सवारोंके मरने—मारनेरूप संकल्पसम्बन्धी पापका निवारण करनेके लिए १४४४ ग्रन्थोंकी रचना की । हरिभद्रके प्रत्येक ग्रन्थके अन्तमें विरह शब्द है जो उनके प्रिय भागिनेय (भानजे) शिष्योंके वियोगका चिह्न है । गुरुने जो गाथायें क्रोध-शमनार्थ भेजी थीं उनका विस्तार करके हरिभद्रसूरिने ‘ समराइच कहा ’ (समरादित्य कथा) नामक ग्रन्थकी रचना की ”

यह कथा श्रीचन्द्रप्रभसूरिके ‘ प्रभावकचरित ’ नामक संस्कृत ग्रन्थमें लिखी हुई है । यह ग्रन्थ विक्रमसंवत् १३३४ का बना हुआ है । ग्रन्थकी प्रशास्तिमें इस समयका उल्लेख है ।

श्रीराजशेखरसूरिका बनाया हुआ एक ‘ चतुर्विंशति प्रबन्ध ’ नामक संस्कृत ग्रन्थ है । वह विक्रमसंवत् १४०९ का बनाया हुआ है । उसमें भी हरिभद्रसूरिकी उक्त कथा लिखी हुई है । उसका सार यह है:-

हरिभद्रसूरिके रोकने पर भी हंस परमहंस बौद्ध तर्क पढ़नेके लिए गये । एक वृद्धाके घर ठहरे और बौद्धाचार्यके पास बौद्धवेष

धारण करके पढ़ने लगे । कपलिकामें रहस्य लिखते गये । गुरुको सन्देह हो गया । उसने परीक्षा करनेके लिए सीढ़ियों पर अर्हत्-बिम्बका चित्र बनवाया । हंस परमहंस उस चित्रके कंठमें तीन रेखा बनाकर और उसे बौद्ध प्रतिमा मानकर उस पर पैर रखकर चले गये । गुरुने देख लिया । हंस परमहंस गुरुके पास जा बैठे; परन्तु गुरुके मुखका रंग बदला हुआ देखकर समझ गये कि अब कुशल नहीं है; यह सब षड्यंत्र गुरुका ही किया हुआ था। वे और कोई उपाय न देखकर पेटमें पीड़ा होनेका मिष करके कपलिकाको लेकर भाग खड़े हुए । गुरुने राजासे कहकर उनके पीछे थोड़ीसी सेना भिजवाई और वह कपलिका मँगवाई । इस सेनाको हंस परमहंसने लड़कर समाप्त कर दी, तब और सेना भेजी गई । इस सेनासे एक तो दृष्टियुद्ध करने लगा और दूसरा कपलिका लेकर भाग गया । सेना हंसका मस्तक काटकर ले गई, परन्तु गुरुको बिना कपलिकाके संतोष न हुआ । तब फिर सेना भेजी गई । परमहंस चित्रकूटके किलेके द्वार पर सोता मिल गया । सेनाने उसका सिर काट लिया और उसे ले जाकर बौद्ध गुरुको सौंप दिया । हरिभद्रको मालूम हुआ । उन्होंने क्रोधित होकर बौद्धोंको कढ़ाईमें होम देनेके लिए खीचनेका विचार किया; पर गुरुने गाथायें भेजकर शान्त कर दिया । इत्यादि । ”

श्वेताम्बर और दिगम्बर कथाओंको पढ़नेसे मालूम होता है कि दोनोंका अधिकांश परस्पर मिलता जुलता हुआ है । दोनोंकी घटनायें ही एक सी नहीं हैं बल्कि नाम भी बिलकुल एकसे हैं ।

‘अकलंक निकलंक’ और ‘हंस परमहंस’ ये दोनों नाम स्पष्टतः बतला रहे हैं कि इन दोनोंमेंसे एक कथा अवश्य ही दूसरी कथाका अनुकरण करके लिखी गई है। परन्तु प्रश्न यह है कि किसने किसका अनुकरण किया और दोनोंमेंसे बनावटी कौन है। इसका उत्तर देना बहुत कठिन है। हंस परमहंसकी कथा श्वेताम्बर सम्प्रदायकी है और लेखक दिगम्बरसम्प्रदायका है, इसलिए आजकलकी पद्धतिके अनुसार केवल यही कह देनेसे निर्णय हो सकता था कि श्वेताम्बर कथा झूठी है। परन्तु यह इतिहासका प्रश्न है, सम्प्रदायका नहीं। और इतिहासान्वेषककी दृष्टिमें यदि श्वेताम्बरसम्प्रदायके लेखक असत्य कल्पना कर सकते हैं तो दिगम्बरसम्प्रदायके कथा-लेखक भी उसके त्यागी नहीं हो सकते हैं। सच्चे और झूठे लेखक दोनोंमें हो सकते हैं। अतः हमें दोनों ही सम्प्रदायकी कथाओं पर कुछ गंभीरताके साथ विचार करना चाहिए।

नेमिदत्त ब्रह्मचारीने अकलंकदेवको पुरुषोत्तम मंत्रीका पुत्र बतलाया है; और ‘राजावलीकथे’ आदि ग्रन्थोंमें वे जिनदास ब्राह्मण और जिनमती ब्राह्मणीके पुत्र बतलाये गये हैं; परन्तु स्वयं अकलंकदेवके रचे हुए राजवर्तिकालंकार नामक प्रसिद्ध ग्रन्थके एक श्लोकसे— जो पहले दिया जा चुका है—मालूम होता है कि वे मंत्रीके नहीं किन्तु ‘लघुहव्व’ नामक राजाके पुत्र थे। यह संभव है कि उक्त स्वप्रशंसावाचक श्लोक स्वयं अकलंकदेवका बनाया हुआ न हो, उनके किसी शिष्यने लिख दिया हो; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह प्राचीन है; प्राचीनसे प्राचीन पुस्तकोंमें लिखा हुआ है और आराधनाक-

थाकोश तथा राजवलीके कर्त्ताके वचनोंकी अपेक्षा अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है । 'पुरुषोत्तम' और 'जिनदास' इन नामोंके कल्पित होनेकी जितनी अधिक संभावना है उतनी 'लघुहव्व'के कल्पित होनेकी नहीं, क्योंकि जिस कर्नाटक प्रान्तमें अकलंक देव हुए हैं उस प्रान्तमें 'लघुहव्व' जैसे नाम ही रक्खे जाते हैं । वहाँ इसीसे मिलते जुलते नामोंवाले अक्क, कर्क, वुक्कराय, आदि अनेक राजा हुए हैं । खोज करनेसे 'लघुहव्व' राजाके वंश और समयादिका भी पता लग सकता है ।

चरितनायकके पिताका वास्तविक नाम न बतला सकना, यह एक ऐसी मोटी गल्ती है, जो हमें कथाओंके सर्वांश पर सर्वतो भ्रमसे श्रद्धा करनेके लिए लाचार नहीं कर सकती और इस कारण हमें दिगम्बर कथाओंके और और अंशों पर भी सन्देह करनेका स्वत्व मिल जाता है ।

अकलंकदेवके भाई निकलङ्क थे, इस विषयमें कथाकोश या राजवलीकी कथाको छोड़कर और प्रमाण नहीं है । हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इस कथामें निकलंकके चरितको जो अपने भाईके लिए आत्मोत्सर्ग करनेका महत्त्व दिया गया है वह साधारण नहीं है । यह इतनी असाधारण और पूज्यता बढ़ानेवाली बात है कि इसका अकलंकदेवके पीछेके सैकड़ों ग्रन्थोंमें उल्लेख होना चाहिए था; परन्तु जिन बीसों स्थानोंमें अकलंकदेवकी स्तुति की गई है—उनके बौद्धविजयादि करनेकी प्रशंसा की गई है, वहाँ भी, और तो क्या निकलङ्कका नाम भी नहीं

लिया है। चौदहवीं शताब्दिके पहलेका अभीतक एक भी ऐसा उपलब्ध नहीं है जिसमें निकलंकका उल्लेख हो। श्रवणबेलगुलके 'पार्श्वनाथबस्ती' नामक मन्दिरमें जो मल्लिषेणप्रशस्ति खुद हुई है और जो ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वकी है शक संवत् १०९० की लिखी हुई है। उसमें चार पद्य अकलंकदेवके विषयके हैं जिनमें तारादेवीके हराने, हिमशीतलकी सभामें बौद्धोंके जीतने और साहसतुंगराजाके दरबारमें जानेकी बातोंका विशेष उल्लेख है; परन्तु उसमें निकलंकके महत्त्वपूर्ण आत्मोत्सर्गका आभास भी नहीं।

अकलङ्कदेवके समयमें दक्षिण कर्नाटकमें जैनधर्मकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। उसे अनेक प्रभावशाली राजाओंका आश्रय प्राप्त था। बौद्धधर्मका भी प्रचार उस समय वहाँ पर था और वह भी एक राजाश्रित धर्म था, परन्तु उस समय वह क्षीणप्रभ हो चुका था। ईस्वीसन् ६४० में जब प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनसाँग दक्षिणमें गया था तभी बौद्धधर्मकी प्रभा क्षीण हो रही थी; तब अकलंकदेवके समयमें तो वह और भी हीनज्योति हो गया होगा। अत एव यह माननेको जी नहीं चाहता कि उस समय उसके अनुयायी ऐसा वर्ताव करते होंगे जो अकलंक निकलंकके साथ किया गया बतलाया जाता है। बौद्धधर्मकी उस समयकी तो कमसे कम यह नीति नहीं हो सकती कि बौद्धधर्मका रहस्य जान लेनेके अपराधमें जैनविद्यार्थियोंको मारनेकी चेष्टा की जाय। अतः ऐसा मालूम होता

। ये पद्य पहले दिये जा चुके हैं।

है कि ब्रह्मचारी नेमिदत्तने या उनके पहलेके कथाकोशलेखक भट्टारक प्रभाचन्द्रने अपनी कथाका पूर्वीश हंस परमहंसकी श्वेताम्बर कथाकी—संभवतः ‘ प्रभावकचरित ’ की कथाकी ही—नकल करके गढ़ लिया है—बौद्धमठमें जाकर पढ़नेकी, बौद्धगुरुके सन्देशकी, प्रतिमा रखकर और वर्तनोंका कर्कश शब्द करके परीक्षा करनेकी, छातेके सहारे कूदकर भागनेकी और मार्गमें एक भाईके मारे जानेकी बात श्वेताम्बर कथामेंसे ज्योंकी त्यों उठाकर रख दी है । नेमिदत्तने इतनी विशेषता अवश्य कर दी है कि जिनप्रतिमाको खड़ी मिटीसे बौद्ध नहीं किन्तु धागा डलवाकर सग्रन्थ श्वेताम्बर प्रतिमा बनवाई है और उसका महात्मा अकलंकके द्वारा अपमान कराया है, हालाँ कि उसे बौद्धप्रतिमा कल्पित करानेमें भी वहाँ कथाका कोई महत्त्व नष्ट न होता था । हमें यहाँ यह बात स्मरण रखना चाहिए कि दूसरे दिगम्बरजैनकथाकारोंने प्रतिमा पर धागा डालकर उसे श्वेताम्बर बनानेकी बातका उल्लेख नहीं किया है । यह कल्पना खास आराधनाकथाकोशके कर्त्ताकी जान पड़ती है ।

हम इस बातको भी असंभव नहीं समझते हैं कि वर्तमान कथाकोश और राजावलीकथे आदिसे भी पहलेके बने हुए किसी ग्रन्थमें अकलंक निकलंककी कथा हो और उसका अनुकरण करके हंस परमहंसकी कथा बनाई गई हो । दिगम्बरके समान श्वेताम्बर लेखक भी ऐसा कर सकते हैं; परन्तु हरिभद्रसूरि अकलंकदेवसे भी पहले हुए हैं—विक्रमसंवत् ९७९ में उनका स्वर्गवास हुआ था । उनके बनायेहुए पचासों ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें ‘ समराइचकहा ’

बहुत प्रसिद्ध है। हरिभद्रके गुरुने उनका क्रोध शमन करनेके लिए जो चार गाथायें लिखकर भेजी थीं कहते हैं कि उन्हींको सूत्र मानकर उन्हींका विस्तारकरके उक्त ग्रन्थ बनाया गया है और उक्त गाथाओंमें यह भाव मौजूद है कि वे हरिभद्रका क्रोध शमन करानेके लिए लिखी गई हैं। इसके सिवाय हरिभद्रके प्रायः प्रत्येक ग्रन्थके अन्तमें जो 'विरह' शब्द आता है वह उनके हंस परमहंस शिष्योंका वियोगसूचक बतलाया जाता है। इस लिए यदि उक्त गाथासूचित क्रोधकषायका और विरहाङ्कका हंस परमहंसके मारे जानेके सिवाय और कोई कारण नहीं है तो कहना होगा कि हंस परमहंसकी कथा अकलंकदेवसे भी पहले की है और उसीको उड़ाकर अकलंक निकलंककी कथाका पूर्व भाग गढ़ लिया है।

अकलङ्कदेवकी कथाकी यह बात अवश्य सच मालूम पड़ती है कि वे किसी बौद्धविद्यालयमें पढ़नेके लिए गये थे और जैसा कि विल्सन साहब कहते हैं वह पोनतगका विद्यालय होगा। यह एक ऐसी घटना है जो हंस परमहंसके बौद्धविद्यालयमें जाकर पढ़नेकी घटनासे मिलती है और चूँकि हंस परमहंसकी कथाका यह भाग मनोरंजक है इसलिए अकलंकदेवकी कथा लिखनेवालेने अपनी कथाको दिलचस्प बनानेके लिए यदि उसकी नकल कर ली हो और इसके लिए एक नये पात्र निकलंककी भी कल्पना कर ली हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। अनेक कथालेखकोंने ऐसा किया है और अपनी कथाओंको मनोरंजक बनानेके लिए इतिहासकी ज़रा भी परवा नहीं की है।

परन्तु अकलंककथाका उत्तर भाग—निकलंकके मारे जानेके बादका कथांश—जिसमें कि बौद्धोंके साथ शास्त्रार्थ होनेका तथा तारादेवीके घटमें स्थापित करने आदिका जिक्र है—कविकल्पित या किसी दूसरी कथाका अनुकरण नहीं मालूम होता । उसके लिए श्रवणबेलगुलका शिलालेख प्रमाण है । उसके ‘तारा येन विनिर्जिता घटकुटीगूढावतारा’ तथा ‘बौद्धोघान्सकलान्विजित्य सुगतः पादेन विस्फोटितः’ आदि पद्योंसे साफ मालूम होता है कि अकलंकदेवका बौद्धोंके साथ शास्त्रार्थ हुआ था और उसमें उनकी विजय हुई थी । अर्थात् प्रभावकचरितके बननेसे लगभग १५० वर्ष पहले यह बात प्रसिद्ध थी और इस लिए यह कथाकोशके राजावलीके लेखककी गढ़ी हुई नहीं है ।

किन्तु बड़े भारी आश्चर्यकी बात यह है कि प्रभावकचरित-र्णित हंस परमहंसकी कथामें भी तारादेवीके साथ शास्त्रार्थ करनेकी बात बिलकुल जैसीकी तैसी लिखी हुई है ! तब क्या प्रभावकचरितके कर्त्ताने अपनी कथाका उत्तरार्ध कथाकोशकी अकलंककथाका अनुकरण करके गढ़ा है ? कमसे कम मुझे तो यह संभव जान पड़ता है । इसके कई कारण हैं—

१ एक तो अकलंकदेवकी ताराघटस्फोटकी कथा प्रभावकचरितसे पुरानी है; कमसे कम वि० सं० ११८९ के पहलेकी तो अवश्य है जब कि मल्लिषेणप्रशस्ति लिखी गई है ।

२ दूसरे हंस परमहंसकी कथाका यह शास्त्रार्थादिका अंश यों ही आपसे जोड़ा हुआ मालूम पड़ता है—कथासंगति ठीक नहीं जान

पड़ती। परमहंसको ज़बर्दस्ती कुछ दिनोंके लिए जीता रखकर उसके द्वारा शास्त्रार्थ करवाया है और आखिर उसे फिर मरवा दिया है। इसकी गढ़न्त साफ़ मालूम होती है।

३ तीसरे प्रभावकचरितसे पहलेका कोई ग्रंथ ऐसा देखनेमें नहीं आया जिसमें इसका उल्लेख हो। हरिभद्रके ग्रन्थोंमें भी इसका कोई आभास नहीं मिलता।

४ हंसके शास्त्रार्थकी बात यदि ऐतिहासिक होती तो श्वेताम्बर-सम्प्रदायके और और ग्रन्थोंमें अवश्य मिलती; पर नहीं मिलती।

४ चौथे सबसे बड़ा प्रमाण कथाके इस भागके कल्पित होनेमें यह है कि राजशेखरसूरि (श्वेताम्बर) के चतुर्विंशतिप्रबन्ध नामक ऐतिहासिक ग्रन्थमें इस बातका नाम मात्रको भी उल्लेख नहीं है कि एक भाईके मारे जाने पर दूसरा भाई किसी राजाकी शरणमें गया और वहाँ उसने बौद्धोंसे शास्त्रार्थ किया, या देवीका पराजय किया। चतुर्विंशतिप्रबन्ध विक्रमसंवत् १४०९ का बना हुआ है। जब इसमें हंसके शास्त्रार्थादिका जिक्र नहीं है, तब यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि प्रभावकचरितके कर्ताने कथाका उत्तरार्ध अकलंकदेवकी कथासे ही उड़ाया है—चाहे वह मल्लिषेण-प्रशस्तिसे उड़ाया हो या किसी दिग्म्बरकथाग्रन्थसे उड़ाया हो। यह नहीं हो सकता कि चतुर्विंशति प्रबन्धके कर्ताने संक्षिप्तताके खयालसे उक्त बातका जिक्र नहीं किया हो। नहीं, उन्होंने जिस प्राचीनग्रन्थके आधारसे उक्त कथा लिखी होगी उसमें यह भाग

न होगा; और प्रमावकचरितके कर्त्ताके समान उन्होंने इस अयथार्थ भागके बढ़ानेकी आवश्यकता न समझी होगी ।

महाकवि वादिराजसूरिका पार्श्वनाथचरित शक संवत् ९४८ का बना हुआ है । उसमें लिखा है:—

तर्कभूवल्लभो देवः स जयत्यकलङ्कधीः ।

जगद्द्रव्यमुषो येन दण्डिताः शाक्यदस्यवः ॥

इससे मालूम होता है कि मल्लिषेणप्रशस्तिसे भी पहले यह बात प्रसिद्ध थी कि अकलंकदेवने बौद्धदस्युओंको दण्डित किया था या उनके साथ शास्त्रार्थ किया था । अर्थात् अकलंककथाका यह शास्त्रार्थादि सम्बन्धी भाग कल्पित नहीं हैं । पीछेके भी दिगम्बर ग्रन्थकार इस शास्त्रार्थका उल्लेख करते हैं:—

अकलङ्कोऽकलंकः स कलौ कलयतु श्रुतम् ।

पादेन ताडिता येन मायादेवी घटस्थिता ॥

[पाण्डवपुराण, पिटर्सनकी चौथीरिपोर्टका पृष्ठ १५७]

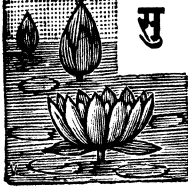
अकलंकगुरुर्जीयादकलंकपदेश्वरः ।

बौद्धानां बुद्धिवैधव्यदीक्षागुरुरुदाहृतः ॥

[ब्रह्माजितकृतः हनुमच्चरित]

उक्त कथाओंके विषयमें मैंने जो अनुमान किये हैं संभव है कि वे ठीक न हों; अधिक छानवीन करनेसे शायद इनसे विरुद्ध प्रमाण मिल जावें, अर्थात् दोमेंसे कोई एक कथा ही ठीक हो, दूसरी पहलीकी अथवा पहली दूसरीकी नकल मात्र हो; परन्तु इस तरहका विश्वास करनेके लिए तो हृदय तैयार नहीं होता है कि दोनों ही कथायें सही हैं—हंस परमहंसकी घटनायें भी सही और अकलंक निकलंककी भी सही ।

प्राचीन भारतीय इतिहासमें जैनमत ।



सु

प्रसिद्ध वर्तमान इतिहासज्ञ मि. विन्सेंट ए. स्मिथ एम. ए. साहबके ' भारतका प्राचीन इतिहास ' (History of India) नामक ग्रन्थकी तृतीयावृत्ति हाल ही प्रकाशित हुई है । इसमें जैनधर्मके सम्बन्धमें बहुतसी महत्त्वकी बातें लिखी गई हैं । हितैषीके पाठकोंके जाननेके लिए यहाँ पर हम उनसबका अनुवाद प्रकाशित करते हैं:—

पृष्ठ १० ।

जैनोंकी धार्मिक पुस्तकें भी भारतके प्राचीन इतिहासकी पूर्तिकी एक साधन हैं । उनमें कितनी ही बहुमूल्य कथाओं और घटनाओंका संग्रह है; परन्तु जैनग्रन्थ अब तक भी पूर्णरूपसे प्रकट नहीं हैं ।

प्रो. जैकोबाने कुछ जैन ग्रन्थोंका अनुवाद किया है । जैनमतके प्रकाशित ग्रन्थोंके विषयमें डाक्टर गरनटकी पुस्तकसे विशदरूपसे पता लगता है । बरोदिया महाशयकी ' जैनसाहित्य और इतिहास ' नामक पुस्तक जो बम्बईमें सन् १९०९ में प्रकाशित हुई है तथा मिसेज सिंकलेयर स्टीवेंसनकी जैनधर्म विषयक पुस्तक भी देखने योग्य है । जैनमतके प्राचीन इतिहासका सर्वोत्तम सारांश डाक्टर हरनलकी बंगाल एशियाटिक सोसायटीकी प्रेजाडेंशियल स्पीचमें दिया गया है ।

पृष्ठ २९ ।

यद्यपि जैनधर्म तथा बौद्धधर्म इन दोनों धर्मोंका प्रादुर्भाव बहुत प्राचीनकालमें हुआ था जिसका कि इतिहास मालूम नहीं है; परन्तु जैसा हम उनके विषयमें जानते हैं उनको वर्द्धमान महावीर और गौतमबुद्धने स्थापित किया है । ये दोनों तत्त्ववेत्ता—जो कितने ही वर्षोंतक समकालीन—रहे मगध (वर्तमान दक्षिणीय विहार) में पैदा हुए, वहीं पर बड़े हुए और वहीं पर उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया । महावीरका—जो वैसाली (गंगाके उत्तरका एक नगर) के एक सरदारके लड़के थे—मगधके राजघरानेसे निकट सम्बन्ध था । इनका पावामें—जो वर्तमान पटना जिलेमें है—निर्वाण हुआ था ।

पृष्ठ ३३ ।

महावीर—जो बिम्बिसारकी रानी और अजातशत्रुकी माताके निकटसम्बन्धी थे—संभवतया बिम्बिसारके राज्यकालके अन्तमें निर्वाणको प्राप्त हुए; परन्तु गौतमबुद्ध अजातशत्रुके राज्यके प्रारंभमें ही मुक्त हुए । अजातशत्रु जो जैनोंमें कुणिकके नामसे प्रसिद्ध हैं—जब ई० सन् से ९०० या ९०२ वर्ष पूर्वके लगभग राजासिंहासन पर आसीन हुए उस समय गौतमबुद्ध निस्सन्देह वृद्ध थे ।

पृष्ठ ४६ ।

अनेक कथाओं और युक्तियोंसे जिनमें बहुत कुछ सत्य मालूम होता है यह बात अच्छी तरह सिद्ध होती है कि महावीर तथा गौतमबुद्ध बहुत दिनोंतक एक दूसरेके तथा बिम्बिसार (श्रेणिक) और अजातशत्रुके समकालीन रहे हैं । यह बात भी कथाओं और

उक्तियोंसे विदित होती है कि महावीर गौतमबुद्धसे पहले निर्वाणको प्राप्त हुए। इन दोनों महात्माओंकी निर्वाणतिथियाँ भारतीय धर्मोंके इतिहासमें बड़े महत्त्वकी हैं, इतिहासमें नये युगको उत्पन्न करती हैं और धार्मिक ग्रन्थकर्त्ता कालनिर्णय विषयक बातोंमें बड़ी बहुलतासे इनका उपयोग करते हैं; परन्तु परस्पर विरुद्ध कथाओं और उक्तियोंकी परीक्षा करनेसे बड़ी कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। ई० सन्से ५२७ वर्ष पूर्व जो आम तौरसे महावीरका निर्वाणसंवत् बताया जाता है अनेक कल्पित उक्तियोंमेंसे एक है। जैन उक्तियोंको आपसमें मिलान करना अथवा चन्द्रगुप्तकी निश्चित तिथिसे मिलान करना असंभव है।

डाक्टर हरनलने परस्परविरुद्ध जैनतिथियों पर विवेचना करते हुए लिखा है कि यद्यपि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही महावीरके निर्वाणको विक्रमसे ४७० वर्ष पूर्व माननेमें—जिसका ई० सन्से ५८ वर्ष पूर्वसे प्रारंभ होता है—सहमत हैं तथापि दिगम्बर विक्रमके जन्मसे और श्वेताम्बर राज्याभिषेकसे गणना करते हैं। पुस्तकोंसे प्रकट होता है कि ५५१, ५४३ या ५२७ वर्ष पूर्व ये सब कल्पित समय हैं। यह बात विशेष रूपसे याद रखने योग्य है कि महावीरके नवें पट्टाधिकारी स्थूलभद्र—जो नवें नन्दके मंत्री थे—महावीरनिर्वाणसे २१५ या २१९ वर्ष पीछे मरे थे और इसी वर्ष नन्दको चन्द्रगुप्तने मारा था। मेरुतुंग पुष्पमित्रको—जो ई० सन्से १८५ वर्ष पूर्व तस्तपर बैठे थे—महावीरसे ३२३-५३ के बीचमें बतलाते हैं।

पृष्ठ १४६ ।

जैनकथाओंमें उल्लेख है कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैन था । जब १२ वर्षका दुष्काल पड़ा तब चन्द्रगुप्त अन्तिमश्रुतकेवली भद्रबाहुके साथ दक्षिणकी ओर चला गया और मैसूरके अन्तर्गत श्रवणबेलगोलामें—जहाँ अबतक उसके नामकी यादगार है—मुनिके तौर पर रहा और अन्तमें वहीं पर उसने उपवासपूर्वक प्राण त्याग दिये । मैंने अपनी पुस्तककी द्वितीयावृत्तिमें इस कथाको रद्द कर दिया था और बिलकुल कल्पित खयाल किया था, परन्तु इस कथाकी सत्यताके विरुद्धमें जो जो शंकायें हैं उन पर पूर्णरूपसे पुनः विचार करनेसे अब मुझे विश्वास होता है कि यह कथा संभवतया सच्ची है और चन्द्रगुप्तने वास्तवमें राजपाट छोड़ दिया होगा और वह जैनसाधु हो गया होगा । निस्सन्देह इस प्रकारकी कथायें बहुत कुछ समालोचनाके योग्य हैं और लिखित साक्षीसे ठीक ठीक पता लगता नहीं, तथापि मेरा वर्तमानमें यह विश्वास है कि यह कथा सत्य पर निर्धारित है और इसमें सचाई है । राइससाहबने इस कथाकी सत्यताका अनेक स्थलों पर बड़े जोरसे समर्थन किया है । हालमें उन्होंने 'शिलालेखोंसे मैसूर तथा कुर्ग' नामक पुस्तकमें इसका जिक्र किया है ।

पृष्ठ १९३ ।

पश्चिम भारतकी जैनकथा अशोकके उत्तराधिकारी सम्प्रतिको जैनधर्मका प्रसिद्ध संरक्षक मानती है और उसकी बड़ी प्रशंसा करती है कि उसने अनार्य देशोंमें भी जैनमठ बनवाये । प्रायः

जितने प्राचीन जैनमंदिर अथवा मठ गुफायें वगैरह हैं—जिनके कि आदिका कुछ पता नहीं है—सब एक स्वरसे सम्प्रतिकी ही बनवाई हुई बतलाई जाती हैं। वास्तवमें वह जैन अशोक समझा जाता है। एक ग्रन्थकार उसको सम्पूर्ण भारतका स्वामी बतलाता है। उसकी राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) थी; परन्तु अन्य कथाओंके अनुसार उसकी राजधानी उज्जैन थी। इन तमाम परस्पर विरुद्ध कथाओंको आपसमें मिलाना अथवा इनसे सत्यकी खोज करना असंभव है। बौद्ध और जैनकथाओंके सहमत होनेसे इस बातका पता अवश्य लगता है कि सम्प्रति वास्तवमें कोई व्यक्ति हुआ है। शायद अशोककी मृत्युके बाद तुरन्त ही उसके पोतोंमें राज्य दो भागोंमें विभक्त हो गया था। दशरथने पूर्वीय देश ले लिया था और सम्प्रतिने पश्चिमीय प्रदेशोंको ले लिया था। परन्तु इस पक्षके समर्थनमें कोई स्पष्ट साक्षी नहीं है।

पृष्ठ २०२-२०३।

जैनधर्म तथा बौद्धधर्मके हासका एक कारण यह भी है कि अन्यमतावलम्बियोंने बौद्धों तथा जैनोंको बहुत दुःख दिया और उनको मरवाया। ससांक, मिहिरकुलने बौद्धों पर जो जो अन्याय किये उनका हाल ह्यूनसाँग आदि समकालीन लेखकोंके लेखोंसे स्पष्ट रूपसे ज्ञात होता है। सातवीं शताब्दिमें इसी प्रकार दक्षिण भारतमें जैनधर्म पर भी आक्रमण हुए और जैनोंका घात किया गया। ई० सन् ११७४-७६ में गुजरातके अजयदेव नामक एक शैव राजाने राज्यको ग्रहण करते ही जैनोंका बड़ी निर्दयतासे वध

करवाया और उनके गुरुको मरवाया । इसी तरहके और भी अनेक प्रामाणिक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि कैसी निर्दयतासे जैनोंका वध किया गया है ।

पृष्ठ ४२९ ।

राजा अमोघवर्ष दिगम्बर जैनधर्मका बड़ा प्रेमी था । वृद्धावस्थामें उसने राजपाटको छोड़कर साधुके व्रत धारण कर लिये थे । सन् ८१५ में वह राजा हुआ और सन् ८७७ तक राज्य करता रहा । वह अधिक समय तक बेंगके पूर्वीय चालुक्य राजाओंसे लड़ता रहा । उसने अपनी राजधानी नासिकसे (?) बदलकर मान्यखेट (निजाम राज्यका वर्तमान मलखेड) में बना ली थी । नवीं शताब्दिके अन्तमें तथा दशवींके प्रारंभमें जिनसेन, गुणभद्र आदि अनेक प्रसिद्ध गुरुओंके कारण जिन पर एकसे अधिक राजाओंकी कृपा रही जैनधर्मने बहुत कुछ उन्नति की ।

पृष्ठ ४४० ।

जैनकथाके अनुसार दक्षिणमें जैनमतका प्रचार चन्द्रगुप्त मौर्यके समयमें उन लोगों द्वारा हुआ कि जो उत्तरसे बारह वर्षके घोर दुर्भिक्षके कारण दक्षिणमें चले गये थे । कुछ इतिहासकार इस घटनाको ई० सन्से ३०९ वर्ष पूर्वकी बतलाते हैं । ये लोग मैसूरमें श्रवणबेलगुलमें ठहर गये जहाँ उनके धर्मगुरु भद्रबाहुने जैनमतानुसार तप और परिषह सहकर प्राणोंको त्याग किया । वर्तमानमें श्रवणबेलगुलके प्राचीन जैनमन्दिरका जो धर्माध्यक्ष है वह अपनेको भद्रबाहुका पट्टाधिकारी बतलाता है और दक्षिण

भारतके समस्त जैन उसको धर्मगुरु मानते हैं। इस कथाका जैन हम पृष्ठ १४६ में कह आये हैं चन्द्रगुप्त मौर्यके अन्तिम समयके हालसे सम्बन्ध है। कुछ इतिहासज्ञ इसको मानते हैं; परन्तु कुछ लोग नहीं मानते। उक्त मौर्य राजाके राज्य छोड़ने और स्वयं प्राण त्यागनेके विषयमें सत्य चाहे जो हो; परन्तु ऐसा कोई काफ़ी सुबूत विद्यमान नहीं है कि जिसके कारण हम इस कथाको स्वीकार दें कि जैन उत्तरसे दक्षिणमें गये और उन्होंने महावीरके मतको दक्षिणमें बौद्धप्रचारकोंके वहाँ पहुँचनेसे ९० वर्ष पहले फैलाया कहते हैं कि अशोकके पोते सम्राटको सुहास्तने जैन बनाया था। सम्राटने अनेक प्रचारकोंको जैनधर्मका प्रचार करनेके लिए दक्षिणमें भेजा। दक्षिणमें निस्सन्देह जैनमतने इतनी उन्नति की कि राइस साहबका यह मानना युक्तियुक्त है कि ईस्वी सन्के प्रथम १००० वर्षोंमें मैसूरमें जैनमतका जोर रहा और वह वहाँका मुख्य धर्म रहा है। केवल मैसूरमें ही इस धर्मका प्रचार न था किन्तु न्यूनाधिक यह मत सर्वत्र फैला था। पाण्ड्य देशमें जैनमत सातवीं शताब्दिमें ही क्षीण होने लगा; परन्तु मैसूर और दक्षिणमें यह उसके सैकड़ों वर्ष बाद तक फैला रहा।

पृष्ठ ४५३ ।

प्रसिद्ध चीनीयात्री ह्युनसाँग महाराज हर्षके समय में भारतमें आया था। वह लिखता है कि मलकूट (यह नाम उसने पाण्ड्य-देशके लिए दिया है) में बौद्धमत तो लगभग मिट गया था, प्राचीन मठ प्रायः नष्ट भ्रष्ट हो गये थे; परन्तु हिन्दूदेवोंके

सैकड़ों मन्दिर थे और दिगम्बर जैन विपुल संख्यामें मौजूद थे ।

पृष्ठ ४५४, ४५५ ।

जब ह्यूनसाँग सन् ६४० ईस्वीमें दक्षिणमें गया तब पल्लवदेश (द्राविड) तथा पाण्ड्यराज्य (मलकूट) दोनों जगहोंमें दिगम्बर जैन प्रजा और जैनमन्दिर बेहद थे । उसके हालसे इस बातका तनिक भी पता नहीं लगता है कि वहाँ किसी प्रकारका धार्मिक वध हुआ । अत एव हमें यह बात माननी चाहिए कि वध जो उसी समयके लगभग अवश्य हुआ है ह्यूनसाँगके वहाँसे जानेके बादमें हुआ है । यह बात पूर्णरूपसे मान्य है कि राजा कून, सुन्दर वा नेदुमारन पाण्ड्य (Kuna, Sundara, or Nedumaran Pandya) श्री जैनकुलमें उत्पन्न हुआ था, उसी धर्ममें जिसने परवरिश पाई थी और जिसका विवाह चोलकी एक राजकुमारीसे हुआ था सातवीं शताब्दिके बीचमें अपनी रानी तथा प्रसिद्ध महात्मा तिरु-ज्ञानसम्बंदर (Tirujnana sambandar) द्वारा शैव हो गया था कि जिस धर्मका चोलराज्यमें बड़ा जोर था । कहते हैं कि सुन्दर राजाने नवीन धर्मके लिए बड़ा ही उत्साह दिखलाया और यहाँ तक किया कि अपने पहले सहधर्मी भाइयों अर्थात् जैनोंको जिन्होंने शैव होनेसे इंकार किया बड़ी ही निर्दयतासे मारा ! ८००० निरपराध जैनोंको इस राजाने सूलीपर चढ़वाकर मरवा डाला ! अरकाटमें टिवटूरके मन्दिरकी दीवारोंके कितने ही अप्रकाशित तक्षण-शिल्पमें इस वधका उल्लेख माना जाता है और उक्त बातकी सत्यतामें उनको पेश किया जाता है । इस वधका अनेक पुस्तकोंमें

अनेक स्थलोंमें उल्लेख है। इस घातसे दक्षिणमें जैनधर्मको बड़ा धक्का लगा। यह घात हुआ है इसमें तो कोई सन्देह नहीं, परन्तु हाँ, यह हो सकता है कि इसमें कुछ अत्युक्ति हो।

पृष्ठ ४७२ ।

पल्लवराजा महेन्द्रवर्मन—जो सातवीं शताब्दिके आदिमें हुआ है—मालूम होता है कि शुरूमें जैन था। किसी तामिल महात्मा उसको शैव बना लिया था। इस राजाने शैव होकर दक्षिण अण्डालके 'पाटली पुत्तिरिम नामक' स्थानमें एक बड़ेभारी जैनमठ बरबाद किया और उसकी जगह शैवमन्दिर बनवा दिया।

—दयाचन्द्र गोयलीय बी. ए. ।

जैनसिद्धान्तभास्कर ।

(समालोचना)



भा स्करके अबतक ४ अंक निकले हैं। त्रैमासिक पत्र है। पहला अंक जुलाई-अगस्त-सितम्बर १९१२ का निकला था और चौथा अंक अर्ध मार्च सन् १९१५ में प्रकाशित हुआ है। लगभग तीन वर्षमें चार अंक निकले। त्रैमासिक हिसाबसे अभीतक इसके ११ अंक निकलने चाहिए थे। श्रीयुत सेठ पदमराजनी रानीवाले इसके आनरेरी सम्पादक हैं। सुनते हैं इसका सारा खर्च भी वे अपन गाँठसे लगाते हैं और अबतक इस काममें लगभग चार हजार रुपया

वर्ष कर चुके हैं ! वे एक व्यापारी पुरुष हैं, इससे संभव है कि उन्हें अवकाश कम मिलता होगा और वे इस ओर यथेष्ट लक्ष न दे सकते होंगे । ऐसी अवस्था में यदि भास्कर समय पर नहीं निकलता है और उसका सम्पादन योग्यतापूर्वक नहीं होता है तो हम केवल यही कह सकते थे कि सेठजी अपने कर्तव्यके पालन-प्रमाद कर रहे हैं—उन्हें इस कार्यमें अपना विशेष समय और चेत लगाना चाहिए; इससे अधिक कहनेका हमें कोई अधिकार न था । सेठजी भी इतना ही कहकर छुट्टी पा सकते थे कि क्या किया जाय, अवकाशाभावसे हम भास्करको समय पर नहीं निकाल सकते हैं और जैसा चाहिए वैसा सम्पादन भी नहीं कर सकते हैं ।

अन्तु चौथे अंकसे मालूम हुआ कि सेठजी अपने इस विलम्ब या प्रमादको और साथ ही अपनी अयोग्यताको भी अपनी प्रतिष्ठाका कारण बनाना चाहते हैं । इसका भी उन्हें बेहद अभिमान है । वे लिखते हैं “ यह कार्य ऐसा है वैसा है, गंभीर है अन्धकारमें है, इसमें अटूट परिश्रम करना पड़ता है, एक एक लेखको बीसों बार लिखना पड़ता है, वर्षों खोजें करनी होती हैं, देरसे निकलने पर भी भास्करने बहुत कार्य किया है, क्या किया है सो अमुक विद्वानके व्याख्यानसे मालूम होगा, इतिहासके सभी पत्र देरीसे निकलते हैं, बंगाल एशियाटिक सुसाइटी जैसी साधनबहुल विशाल संस्थाओंके जनरल तीन तीन चार महीनेकी देरीसे निकलते हैं तब पाठक ही सोचें कि भास्कर देरीसे निकलता है या जल्दी ? यह इतना कठिन काम है कि यदि भास्कर त्रिमासिककी जगह त्रैवार्षिक भी बनाया

जाय तो भी कुछ अनुचित न होगा, ” इत्यादि । सेठजीकी इस अभिप्रायकी लिखावट बतला रही है कि वे जितना कार्य कर रहे हैं उससे दश बीस गुणा यश लूटना चाहते हैं और एक भोलेभाले समाज पर अपने महान् इतिहासज्ञ होनेका दावा करते हैं । हमारी समझमें यह सर्वथा अनुचित है और इस तरहके विश्वाससे समाजको हानि पहुँचनेकी संभावना है ।

भास्करमें अभीतक जितने लेख प्रकाशित हुए हैं उनमें एक भी लेख ऐसा महत्त्वका या मौलिक लिखा हुआ नहीं है जिसके विषयमें यह कहा जा सके कि उसकी सामग्री संग्रह करनेमें या छानबीन करनेमें वर्षों तो क्या महीनों या सप्ताहों भी परिश्रम करना पड़ा हो । ऐस एक भी लेख नहीं है जिसमें किसी अप्रकट बात पर नवीन प्रकाश डाला हो या कोई नवीन खोज की हो । कोई लिपि भी ऐसी महत्त्वकी नहीं निकली जिसका नया आविष्कार किया गया हो य जिसके पढ़नेमें वर्षों लग गये हों । प्रमाद और भूलें इतर्न भरी हुई हैं कि पढ़कर आश्चर्य होता है । लेखप्रणाली इतिहासकी मर्यादासे बिल्कुल बहिर्भूत है । उसे पढ़कर कोई यह नहीं कह सकता कि उसके लेखकको इतिहासका यत्किञ्चित् भी परिचय है । प्रायःसब ही लेख अत्युक्तियोंसे भरे हुए हैं । तब यह कैसे मान लिया जाय कि विलम्ब होनेका कारण विषयका गोरव या गहरी छानबीन करना है ।

इसके सिवाय भास्करमें जो कुछ लिखा गया है, उसका अधिकांश किरायेका है—वैतनिक कर्मचारियोंका लिखा हुआ है । यदि उसमें सेठ-

जीका कुछ है तो यही कि उसे लोग आपका ही लिखा हुआ समझते हैं । भास्करका संयुक्त अंक (द्वितीय तृतीय) यहीं बम्बईमें तैयार कराया गया था । जहाँतक हम जानते हैं उसे श्रीयुत तात्या नेमिनाथ पांगल और पं० हरनाथ द्विवेदीने मिलकर सम्पादन किया था । ये दोनों महाशय लगभग सवासौ रुपया मासिक वेतन लेकर कोई चार पाँच महीनेतक काम करते रहे थे ? पहले और चौथे अंकोंमें भी सेठजीका खुदका परिश्रम बहुत कम दिखलाई देता है । ऐसी अवस्थामें भी सेठजी जैनसमाजको यह बतलाता चाहते हैं कि मैं स्वयं लेखक और इतिहासज्ञ हूँ और निःसीम परिश्रम करके भास्करका सम्पादन करता हूँ । पश्यतु साहसम् ।

यह जैनसमाजका सौभाग्य है कि सेठ पदमराजजी जैसे पुरुष तो थोड़े ही समय पहले ग्रन्थ छपानेके भी कट्टर विरोधी थे— इतिहासपर कृपा दृष्टि करने लगे हैं और उन्हें इतना शौक लग गया है कि इस काममें अपनी गिरहके हजारों रुपया बड़ी खुशीसे खर्च कर रहे हैं । सेठजीकी इस उदारताकी सभी लोग मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हैं—है भी यह यथार्थ; परन्तु सेठजी अपनी इस उचित प्रशंसासे सन्तुष्ट न होकर जो बड़ी भारी इतिहासज्ञताका भी समाज पर दावा करने लगे हैं वह अनुचित है और इससे न केवल समाजकी ही हानि होगी; किन्तु सेठजी भी इस विषयमें अपनी उन्नति न कर सकेंगे । अतएव हम आवश्यक समझते हैं कि भास्करकी यथार्थ समालोचना करके बतला दिया जाय कि उसमें इतिहासत्व कितना है और किस योग्यतासे उसका सम्पादन हुआ है ।

हम कोई इतिहासज्ञ नहीं जो एक ऐतिहासिक पत्रकी समा-
लोचना कर सकें। इस विषयमें हमारा ज्ञान बहुत ही परिमित है।
'इतिहासका विद्यार्थी' कहलाना भी हम अपने लिए काफीसे ज्यादा
सम्मानका कारण समझते हैं; परन्तु भास्करमें अभीतक जो कुछ
लिखा गया है वह प्रायः इतना साधारण है कि यदि कोई
इतिहासका प्रारंभिक विद्यार्थी ही उसे ध्यान पूर्वक पढ़े तो बहुत
कुछ कहनेका अवकाश पा सकता है।

भास्करके चारों अंकोंकी हम क्रमशः अलोचना करेंगे; पर
उसमें हम संभवतः इतिहासका ही विचार करेंगे। उसकी भाषा
आदिकी आलोचनाके लिए हमारे पास काफी जगह नहीं। इतना
ही कहना यथेष्ट होगा कि उसकी भाषा बहुत ही क्लिष्ट, संस्कृत-
बहुल, आडम्बरपूर्ण और बनावटी होती है। ऐसा मालूम होती है
कि लेखकने उसे अपने विचार प्रकट करनेके लिए नहीं किन्तु
अपना पाण्डित्य प्रकट करनेके लिए लिखा है। पाठक उसे समझेंगे
या नहीं, इससे लेखकको कोई मतलब नहीं। एक ऐतिहासिक
पत्रकी भाषा मामूली पत्रों जैसी रहे यह बात शायद उसके सम्पा-
दककी शानके खिलाफ है।

प्रथमाङ्क ।

सबसे पहले हम पाठकोंका ध्यान इस अंकके आठवें पृष्ठ पर
छपे हुए "पत्रका मुख्योद्देश्य" शीर्षककी ओर आकर्षित करते हैं।
सम्पादक महाशय कहते हैं कि "इसमें ऐतिहासिक विषयकी चर्चा
तथा भवनमें सुरक्षित शास्त्रोंके परिचयके सिवाय राजनैतिक और

सामाजिक विषयका उल्लेख बिल्कुल ही न रहेगा और यह भी इसका एक मुख्य उद्देश्य रहेगा कि किसी समाचारपत्रके विषयोंकी आलोचना न करना ।” अब पाठक इन उद्देश्योंके साथ भास्करके नये अंकके लेखोंका मिलना कर देखें । जैनब्रदर्स एसोशियेशन प्रयाग, जैनमित्रके सम्पादक, मोरेना पाठशाला आदि पर आपने जो अमर्यादित आक्रमण किये हैं, मालूम नहीं वे इतिहासके किस अंगसे ताल्लुक रखते हैं । सामाजिक बातोंमें नहीं पड़नेका और समाचारपत्रोंकी आलोचना न करनेकी प्रतिज्ञा करनेका भला और कौनसा अनोखा अर्थ है ? माना कि एसोसिएशनके मेम्बरोँके विचार अच्छे नहीं, ब्रह्मचारीजीने गलती की; पर इससे आपके इतिहासपत्रका क्या सम्बन्ध ? क्या आप अपना उक्त सामाजिक क्रोध अन्य किसी सामाजिक पत्रके द्वारा प्रकट न कर सकते थे ? बड़े अफसोसकी बात है कि अपने उद्देश्योंको भी भूल जानेवाले लोग अभिमानके मारे जमीन पर पैर नहीं रखना चाहते ।

भास्करके किसी भी लेखको आप पढ़ लीजिए, आपको यह कदापि मालूम नहीं पड़ सकता कि हम कोई इतिहासका लेख पढ़ रहे हैं । इतिहासलेखकी भाषा जँची तुली, आडम्बरशून्य होती है—बिना जँचा तुला एक शब्द भी उसकी कलमसे नहीं निकलता; पर यहाँ इस बातका सर्वथा अभाव है । महापुराणका परिचय देते हुए आप लिखते हैं:—“ जिन्होंने इस परमोत्कृष्ट ग्रन्थका स्वाध्याय विचारपूर्वक किया होगा उनको यह मालूम होगा कि कैसे महत्त्व तथा इतिहासके अनेक अभावोंकी पूर्तिका कारण यह ग्रन्थ है ।

इतिहासके लिये जितनी सामग्रियोंकी जरूरत है हमारे आचार्य प्रव-
रने प्रायः सभी विषयोंका समावेश इसकी रचनामें किया है । यह
भारतवर्षका एक सच्चा सर्वांगपूर्ण इतिहास माना जाय तो इसमें
कुछ भी अत्युक्ति न होगी ।” इत्यादि । लीजिए, सेठजीने भारत-
वर्षके सर्वांगपूर्ण सच्चे इतिहासका पता लगा लिया; अब
विद्वानोंको किसी तरहके प्रयत्न करनेकी जरूरत नहीं ।
इस विषयमें लोग नाहक सिर खपा रहे हैं । भला, इस बेलगामी
प्रशंसाका भी कुछ ठिकाना है ? समझमें नहीं आता कि हम इसे
पुराणभक्ति कहें या मूर्खता ! भगवान् आदिनाथके समयका अथवा
अधिकसे अधिक महावीर स्वामीतकका, गुरुपरम्परासे चला आता
हुआ, विना सन् संवत्का, मुख्यतः धार्मिक जगत्का इतिहास तो
हम भी इसे कह सकते हैं; परन्तु भारतका सच्चा सर्वांगपूर्ण इतिहास
कहना तो आप ही जैसे साहसियोंका काम है । मालूम नहीं ‘सर्वा-
गपूर्ण’ का अर्थ आप क्या समझते हैं । हाँ, महापुराणकी वे ‘सभी
इतिहासकी सामग्रियाँ’ तो प्रकट कर दीजिए और उनसे और नहीं
तो महावीरभगवान्का समय ही निश्चित कर दीजिए और उस
समयकी राजनीतिक सामाजिक स्थिति क्या थी सो भी बतला दीजिए ।
अरे भाई ! जिस इतिहासकी डुगडुगी आप भास्करके प्रत्येक
पृष्ठमें पीटा करते हैं क्या वही इतिहास आपके भवनके इस आदिपुरा-
णमें मौजूद है !

आगे आदिपुराण—उत्तरपुराणके मंगलाचरण और प्रशस्तियाँ
हिन्दी अनुवादसहित प्रकाशित की गई हैं । मूलमें जो अशुद्धियाँ हैं

वे मामूली हैं; परन्तु अनुवाद तो बहुत ही अंडबंड लिखा गया है । अनुवादक महाशय पं० झम्मनलालजी हैं । वे इतिहासज्ञ नहीं हैं; परन्तु सम्पादक महाशय तो इतिहासज्ञशिरोमणि हैं ! ऐतिहासिक अशुद्धियाँ उनकी दृष्टिमें तो आजानी थीं । यह एक बहुत ही प्रसिद्ध बात है कि प्रभाचन्द्र न्यायकुमुदचन्द्रोदय नामक न्यायग्रन्थके बनानेवाले हैं । संक्षेपमें इस ग्रन्थको 'चन्द्रोदय' भी कहते हैं । परन्तु मंगलाचरणके ४७ वें श्लोकके अर्थमें अनुवादक महाशय कहते हैं कि " प्रभाचन्द्रने चन्द्रोदय नामक काव्य बनाकर जगत्को आल्हादित किया ! " पर जान पड़ता है 'चन्द्रोदय' का यही अर्थ सम्पादक महाशयको भी मंजूर है, इसलिए वे आगे ४९ वें पृष्ठमें जिनसेन स्वामीका परिचय देते हुए लिखते हैं:—“ चन्द्रोदयके रचयिता श्रीप्रभाचन्द्र कविकी आपने बड़ी पूज्य श्रद्धा भरी स्तुति की है और इनकी बड़ी गौरवता (?) दर्शायी (?) है । इससे मालूम होता है कि चन्द्रोदय काव्य उस समय सर्वश्रेष्ठ माना जाता था! ” बाहरी इतिहासज्ञता ! अजी इतना और लिख देते कि “ भवनमें यह काव्य मौजूद है ” तो बात और भी पक्की हो जाती । ४९ वें श्लोकमें शिवकोटिके 'भगवतीआराधना' नामक ग्रन्थका स्पष्ट उल्लेख है; परन्तु अनुवादक महाशय उसे नहीं बतला सके—यों ही शब्दार्थ मात्र कर दिया है । ५० वें श्लोकका अर्थ बहुत ही अस्पष्ट है । ५१ वें काणभिक्षुके 'कथालङ्कार' का उल्लेख है; परन्तु वह भी स्पष्ट करके नहीं बतलाया गया । ५२ वें श्लोकका अर्थ तो बहुत ही षण्डित्य पूर्ण है:—

कवीनां तीर्थकृद्देवः किं तरां तत्र वर्णयते ।

विदुषां वाङ्मलध्वंसि तीर्थं यस्य वचोमयम् ॥

इसका अर्थ यह है कि “ ‘देव’ कवियोंके तीर्थकर हुए हैं, अर्थात् विद्वानोंमें तीर्थकरके तुल्य (बड़े पूज्य) हुए हैं । उनके विषयमें अधिक क्या कहा जाय ? उनका वचोमयतीर्थ (व्याकरण शास्त्र) विद्वानोंके वचनमलको नष्ट करनेवाला है । ” इस श्लोकमें देवन्दि या पूज्यपाद आचार्यका स्मरण किया गया है । ‘देव’ उनका संक्षिप्त किया हुआ नाम है ।

अकलंकदेवका भी नाम ‘देव’ है; परन्तु उक्त श्लोकके आगे ही ‘ भट्टाकलङ्कश्रीपालपात्रकेसरिणां गुणाः ’ कहकर उनका जुदा स्मरण किया गया है । इसलिए इसका अर्थ अकलंक नहीं किया जा सकता । अब देखिए भास्करमें इसका कितना बढ़िया अर्थ किया गया है:—“ कवियोंमें कितने ही तीर्थकर भी हो गये हैं, किन् किन्का वर्णन किया जाय ? इन लोगोंके वचनमय तीर्थने विद्वानोंके वाङ्मलको नष्ट कर दिया। ” लीजिए, यह बिलकुल नई बात मालूम हुई ! अच्छा होता यदि ऐसे पंचकल्याणकप्राप्त कवियोंके नाम भी बतला दिये जाते ।

आगे उत्तरपुराणके ७६ वें अध्यायके कुछ श्लोक दिये हैं । उनमें द्वादशांगके पाठी जिन ११ मुनियोंके नाम हैं उनका अर्थ करनेमें बहुत ही भद्दी भूल की गई है । ‘ विजयी बुद्धिलो गङ्ग-देवश्च क्रमशो मतः । ’ इसका ‘ क्रमशो ’ शब्द यह बतलाता है कि ये सब आचार्य क्रमसे—एकके बाद एक—हुए हैं । परन्तु अर्थ

करनेवाले 'क्रमशो' की जगह 'क्रमणो' पाठ मानकर एक 'क्रमण' नामक आचार्यका आविष्कार करते हैं और साथ ही 'नागसेन' का अस्तित्व ही मिटा देते हैं ! 'जयनामानुगांकः नहीं 'जयनागानुगांकः' पाठ है जिसका अर्थ जयसेन और नागसेन होता है ।

इसके बाद उत्तरपुराणकी प्रशस्ति दी है । उसमेंसे मालूम नहीं कि ५-६-७-८ श्लोक क्यों छोड़ दिये ? वे तो इतिहासकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वके हैं । उनमें वीरसेनस्वामीका परिचय दिया गया है और उनके बताये हुए 'सिद्धभूपद्धतिः' नामक ग्रन्थका उल्लेख किया गया है । श्लोक जरा कठिन अवश्य है, शायद इसीलिए अनुवादकमहाशयने उनको छोड़ दिया हो । खैर, इच्छा उनकी !

इसी प्रशस्तिके १३-१४-१५ श्लोकोंमें यह बतलाया है कि जिनसेनके सतीर्थ या गुरुभाई दशरथगुरु थे और गुणभद्र इन दोनोंके शिष्य थे (शिष्यः-श्रीगुणभद्रसूरिरनयो आसीज्जगद्विश्रुतः) । इन श्लोकोंमेंसे पहलेके अर्थमें तो आप कहते हैं कि "चन्द्रमाके सहवर्ती आकाशके एक नेत्र सूर्यकेसे दशरथगुरु जिनसेनाचार्यके सहधर्मी हुए ।" परंतु आगे ६-७ पंक्तियोंके बाद ही १५ वें श्लोकके अर्थमें फरमाते हैं—“दशरथगुरु और गुणभद्राचार्य जिनसेन के प्रिय शिष्य हुए ।” बाहरी इतिहासज्ञता ! तुझे धन्य है जो दशरथगुरुको जिनसेनका सतीर्थ भी बतलाती है और शिष्य भी बतलाती है ! ऐसी इतिहासज्ञताके बिना हम जैसोंको इतिहासकी शिक्षा कैसे दी जा सकती ?

आगे १६-१७-१८-१९-श्लोकोंका यह कुलक हैः-

कविपरमेश्वरनिगदितगद्यकथामातृकं पुरोश्चरितं ।

सकलच्छन्दोलङ्कृतिलक्ष्यं सूक्ष्मार्थं गृहपदरचनम् ॥ १६ ॥

व्यावर्णनोरुसारं साक्षात्कृतसर्वशास्त्रसद्भावम् ।

अपहस्तितान्यकाव्यं श्रव्यं व्युत्पन्नमतिभिरादेयम् ।

जिनसेनभगवतोक्तं मिथ्याकविदर्पदलनमतिललितम् ।
 सिद्धान्तोपनिबन्धनकर्त्रा भर्त्रा चिराद्विनायासात् ॥ १८ ॥
 अतिविस्तरभीरुत्वादवशिष्टं संगृहीतममलधिया ।
 गुणभद्रसूरिणेदं प्रहीणकालानुरोधेन ॥ १९ ॥

इनमेंसे पहले तीन श्लोकोंमें तो जिनसेनस्वामीके आदिपुराणके विशेषण हैं जिनमें महत्त्वका विशेषण यह है कि वह पुराण ' कवि परमेश्वरनिगदितगद्यकथामातृकं ' है, अर्थात् कविपरमेश्वरके किसी गद्यपुराणके आधारसे उसकी रचना हुई है—मूल उसका उक्त गद्य पुराण है । आगे १९ वें श्लोकमें बतलाया है कि उसके अवशिष्ट भागको गुणभद्रसूरिने बनाया ।

अब देखिए, भास्करमें इन श्लोकोंका क्या अर्थ प्रकाशित हुआ है:—“ सभी छन्द और अलङ्कारका लक्ष्य, सूक्ष्मार्थ तथा गूढपदकी रचनावाली एक 'गद्यकथा' कविपरमेश्वरने बनायी ।.....” अच्छा बनाई होगी; पर उसका सम्बन्ध भी तो बतलाइए कि इस प्रकरणमें क्या है! अनुवादकसे जरा आप भी तो पूछ लेते कि 'कवि परमेश्वरने बनाई ' यह अर्थ कहाँसे आकूदा । पहले श्लोकमें तो क्रियाका कहीं चिन्ह भी नहीं है । और नहीं तो जैनहितैषीमें प्रकाशित हुए ' जिनसेन और गुणभद्राचार्य ' शीर्षक विस्तृत लेखको ही उठाकर देख लेते; उसमें तो इन श्लोकोंका अच्छी तरह खुलासा किया है । आपका जिनसेन और गुणभद्रवाला सारा लेख ही तो उसीको सामने रखकर लिखा गया है ।

आगे २९ वें श्लोकके अर्थमें लिखा है कि “श्लोकसेन मुनीश कविवर जिनसेनाचार्यके मुख्य शिष्योंमें थे ! ” बलिहारी है इस

इतिहासज्ञताकी ! गुणभद्रके शिष्यको आप जिनसेनका शिष्य बनाते हैं ! 'तस्य शिष्येषु मुख्यः' में 'तस्य' का सम्बन्ध १९ वें श्लोकके गुणभद्रसूरिसे है, यह बुद्धिको जरासा ही जोर देनेसे मालूम पड़ जाता; पर जोर लगानेकी आप आवश्यकता समझें तब न ! किसी पण्डितसे अर्थ लिखवा दिया कि छुट्टी पाली । स्वयं अर्थ लगानेके लिए तो योग्यताकी भी आवश्यकता होती है !

मंगलाचरण और प्रशस्तिके अनुवादमें और और दोष भी बहुत अधिक हैं; पर खेद है कि स्थानाभावके कारण हम उनकी आलोचना नहीं कर सके ।

इसके आगे सेनगणकी सार्थ पट्टावली है जो दो अंकोंमें समाप्त हुई है । इसके आधेभागका अनुवाद पं० ज्ञम्नलालजीने और शेषका पं० हरनाथजी द्विवेदीने किया है । अनुवादकी क्लिष्टता दुर्बोधता और अर्थच्युतिके विषयमें हम कुछ नहीं कहना चाहते । हम उसकी इतिहासताके विषयमें ही कुछ निवेदन करेंगे । पट्टावलीका मूल्य उस समय समझमें आता जब सम्पादक महाशय उसकी प्रामाणिकता सत्यता आदिके विषयमें कुछ नोट देते; परन्तु इस परिश्रमसाध्य कार्यमें वे क्यों पड़ने लगे ? अच्छा, तो आइए हम ही कुछ विचार करें । हमारी समझमें इतिहासकी दृष्टिसे यह पट्टावली अधिक महत्त्वकी नहीं है । यह पट्टावली है भी नहीं । यह पुरानी पद्धति है कि जब भगवानका अभिषेक किया जाता है तब अभिषेक करनेवाले अपनी गुर्वावलीका उच्चारण करते हैं । अवश्य ही किसी समय यह पद्धति गुरुपरम्पराको स्मरण रखनेमें बहुत उपयोगी

रही होगी; परन्तु पीछे इसकी यथोचित रक्षा न हुई और एक सीति मात्र रह गई। जिसको जितने नाम या जितनी परस्परा याद रही, पीछे उसीसे काम लिया जाने लगा। पहले विद्वान् लोग इसे स्वयं संस्कृत भाषामें रचकर पढ़ते थे; परन्तु पीछे दूसरोंकी रचीरचाई ही पढ़ी जाने लगी। इस तरहकी प्रतिदिन पढ़नेके लिए लिखी हुई गुर्वावलि याँ अकसर मिलती हैं और भट्टारक तथा उनके शिष्योंको तो प्रायः कण्ठ आती हैं। यह पट्टावली भी उसी तरहकी गुर्वावलियोंमेंसे एक है। इसके अन्तिम वाक्योंसे मालूम होता है कि यह दिल्लीकी गद्दीके पुष्करगच्छीय भट्टारक छत्रसेनकी अभ्युदयसमृद्धिकी सिद्धिके लिए अभिषेकके समय पढ़ी गई थी। अवश्य ही इसमें जिन आचार्योंके नाम आये हैं वे सच होंगे और उनमेंसे बहुतोंकी प्रशंसा भी शायद सच होगी; परन्तु वह क्रमबद्धपरम्परा है इसको तो भास्करके सम्पादकको छोड़कर और कोई सच नहीं मान सकता। शायद उनकी समझमें कोई भी लिखी हुई बात असत्य नहीं हो सकती!

सम्पादक महाशयने यह पट्टावली जिनसेन गुणभद्र स्वामीका परिचय करानेके लिए—उनकी वंशपरम्परा बतलानेके लिए प्रकाशित की है; परन्तु यह भी बतलानेकी कृपा न की कि इसकी प्रारंभकी गुरुपरम्परा आदिपुराणके ७६ वें अध्यायकी परम्परासे क्यों नहीं मिलती है? आदिपुराणके कर्त्ता (और इन्द्रनन्दि आदि भी) पाँच श्रुतकेवलियोंके बाद विशाख आदि ११ द्वादशाङ्गज्ञाताओंका नाम बतलाते हैं; पर आपकी पट्टावलीमें सिर्फ ९ ही आचार्य बतलाये गये हैं सिद्धार्थ और नागसेनका उनमें पता ही नहीं है। आगे पाँच एका-

दशांगधारियोंके नाम पट्टावलीमें ठीक हैं; परन्तु आपके अनुवादक महाशय उनमें एक मुनीन्द्रको और जोड़कर छह कर देते हैं । वास्तवमें यह 'मुनीन्द्र' शब्द पाण्डुका विशेषण है कोई जुदा नाम नहीं । इनके आगेके चार आचार्योंमें एक जिनसेन नाम भी मालूम नहीं क्यों बढ़ाया गया है । अपने पाठकोंको पट्टावलीकी मनोयोगपूर्वक पर्यालोचना करनेकी सम्मति न देकर उसकी इन भिन्नताओं पर सम्पादक महाशय स्वयं ही कुछ विचार करते तो अच्छा होता । उससे आपकी और आपकी पट्टावलीकी दोनोंकी ही योग्यताकी जाँच हो जाती ।

पट्टावलीके ८ वें गद्यमें गणितज्ञ महावीराचार्यका उल्लेख है जो (गणितसारसंग्रहके मंगलाचरणसे मालूम होता है कि) अमोघवर्ष राजाके समयमें हुए हैं और इस कारण वे वीरसेन जिनसेनके समकालीन सिद्ध होते हैं; परन्तु देखते हैं कि उसके आगेके ११ वें गद्यमें नन्दिसेनादि संघस्थापक अर्हद्वलिका स्मरण है जो विक्रमकी पहली शताब्दिमें बतलाये जाते हैं । उनके आगे चामुण्डरायकृत बाहुबलिकी प्रतिष्ठा करानेवाले अजितसेनाचार्यका उल्लेख है जो शककी १० वीं शताब्दिमें हुए हैं । इनके बाद १५ वें गद्यमें शिवकोटि महाराजको मुनि बनानेवाले समन्तभद्र स्वामीका उल्लेख है जो कुन्दकुन्द स्वामीसे कुछ ही पीछेके बतलाये जाते हैं । इस तरहकी क्रमभंगता उसमें जगह जगह दिखलाई देती है जिससे यह कभी नहीं कहा जा सकता कि उसमें सेनसंघके आचार्योंकी क्रमबद्ध परम्परा है ।

अत्युक्तियोंका तो वह भण्डार है। प्रशंसा करनेमें उसका लेखक बहुत ही उदार है। इसी लिए वह गुणभद्रस्वामीको द्वादशांग चतुर्दश-पूर्वका ज्ञाता बतलाता है ! जिनसेनस्वामीको धवलमहाधवलपुराणादि सकल ग्रन्थोंका कर्ता कहता है, यद्यपि उन्होंने जयधवलटीकाके ही शेष अंशको बनाया है, महाधवलटीकाको नहीं। श्रवणबेलगुलस्थ बाहुबलि स्वामीकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करानेवाले चामुण्डरायको वह दक्षिण-तैलङ्ग-कर्णाटक देशाधिपति बतलाता है ! परन्तु असलमें वे गंगवंशीय राजा राचमल्लके मंत्री और सेनापति थे। लेखकको क्या खबर थी कि कुछ समयके बाद मेरी इस रचनाको कोई-इतिहासकी चीज समझेगा, इसीलिए उसने जो मनमें आया-कर्णमधुर और यमकानुप्रासयुक्त जो विशेषण सामने आये उन्हें ही लिख दिया है। वह अपने एक आधुनिक सोमसेन नामक भट्टारकको नौलाख धनुर्धरोंके स्वामी, दक्षिण कर्नाटकीय १७ लाख राजाओंसे पूजित बतलाता है!!! बुद्धिशून्य अन्धविश्वासियोंको छोड़कर और कोई तो शायद ही इस पट्टावलीकी बातोंको माननेके लिए तैयार होगा।

इसके आगे 'जिनसेन और गुणभद्राचार्यका परिचय' शीर्षक लेख है। इसके प्रारंभमें ही आप लिखते हैं कि "जिनसेन और गुणभद्राचार्यने अपने समयादिका निर्णय कहीं नहीं किया और न अपनी पूरीपूरी पट्टावली ही किसी ग्रन्थमें दी।" सेठजी, जिनसेनस्वामीने तो अवश्य ही अपना समय ग्रन्थ लिखनेका नहीं बताया है; परन्तु गुणभद्रने तो बतलाया है ! उत्तरपुराणकी प्रशस्ति जो आपने इसी अंकमें प्रकाशित की है, उसमें साफ शब्दोंमें लिखा है

कि शक संवत् ८१० में उत्तरपुराण समाप्त हुआ । गुणभद्रने अपने संग्रहका परिचय भी काफी दे दिया है । अच्छा होता यदि आप लेख लिखते समय एकबार प्रशस्तिको अच्छी तरह बाँच जाते । इनके समयनिर्णयको आपने जो महाकष्टसाध्य बतलाया है सो भी ठीक नहीं । इनके समय निर्णयके तो इनके ग्रन्थोंमें ही अनेक सुलभ साधन मौजूद हैं ।

आगे आपने कालिदास और जिनसेनकी समकालीनता दिखलाने वाली कथाका उल्लेख करके उसको ठीक बतलाया है । पर वह निरी गप्प है । उसके सिद्ध करनेके लिए आपने २-३ किरणमें एक लेख लिखा है, पर अभी तक वह अपूर्ण ही है; चौथी किरणमें भी आपको उसके पूर्ण करनेका अवकाश न मिला ! खैर, तो उसे पूरा हो जाने दीजिए, हम भी उसके विषयमें तभी कुछ लिखेंगे ।

आगे आप लिखते हैं कि समन्तभद्रके शिष्य शिवकोटि, शिवकोटिके वीरसेन और उनके जिनसेन थे, अर्थात् वीरसेन समन्तभद्रके प्रशिष्य थे ! इस बड़ी भारी भद्दी भूलका कारण यह है कि एक तो सेठ जी स्वयं संस्कृत नहीं जानते हैं और दूसरे पढ़ावलियों पर आपको केवलीके वचनों जैसी श्रद्धा है । हस्तिमल्ल कवि अपने नाटककी प्रशस्तिमें समन्तभद्र और उनके दो शिष्य शिवकोटि और शिवायनका उल्लेख करके कहते हैं:—

तदन्ववाये विदुषां वरिष्ठः स्याद्वादिनिष्ठः सकलागमज्ञः ।

श्रीवीरसेनोऽजनि तार्किकश्रीः प्रध्वस्तरागादिसमस्तदोषः ।

इस श्लोकमें जो यह पद है कि उनके 'अन्ववायमें' सो

इसका अर्थ वंश या शिष्यपरम्परा ही होती है । अर्थात् हस्तिमल्लका कथन केवल इतना है कि शिवकोटि औ शिवायनकी वंशपरम्परामें वीरसेनस्वामी हुए । पट्टावलीमें भी यह कहीं नहीं कहा कि वे उनके शिष्य थे । फिर आपने यह आविष्कार कहाँसे कर डाला ? जरा सोचिए तो सही कि समन्तभद्र और वीरसेन स्वामीके समयमें कितना अन्तर है ? उन्हें आपकी पट्टावलियोंके अनुयायी तो विक्रमकी दूसरी शताब्दीका मानते हैं और श्रीयुत सतीशचन्द्र विद्याभूषण आदि ईसाकी छठी शताब्दिमें मानते हैं । पर वीरसेन स्वामी विक्रमकी नववीं शताब्दिके विद्वान हैं । हरिवंश और आदिपुराणके कर्त्ता दोनोंने पूज्यपाद स्वामीका स्तवन किया है और पूज्यपादने अपने व्याकरणमें समन्तभद्रके व्याकरणका उल्लेख किया है, अतएव वे उनसे भी प्राचीन हैं । आवश्यकता होनेपर इस विषयमें और भी वीसों प्रमाण दिये जा सकते हैं कि समन्तभद्र और वीरसेनके बीचमें कमसे कम २००-२५० वर्षका अन्तर अवश्य है । कहाँ तो आपकी ऐसी भद्दी नासमझी और कहाँ चौथे अंकका आसमानसे बातें करनेवाला ऐतिहासिक अभिमान ! सचमुच ही हमें इससे बड़ा आश्चर्य होता है ।

जिनदत्तचरित्र गुणभद्रका बनाया हुआ स्वतंत्र ग्रन्थ है । यह प्राप्य भी है । परन्तु भास्करसम्पादक इसे उत्तरपुराणका ही एक भाग बतलाते हैं । इसीसे तो पता लगता है कि आपने उत्तरपुराणका स्वाध्याय कितने मनोयोगसे किया है ।

जिनसेन और गुणभद्रके विषयमें भास्करमें जो कुछ लिखा गया

है और उसका जितना अंश सही है; यदि हम पर स्वप्रशंसाका दोष न लगाया जाय तो हम कहेंगे कि वह सबका सब हमारे 'जिनसेन और गुणभद्राचार्य' शीर्षक लेखको देखकर लिखा गया है। उसमें ऐसी एक भी महत्त्वकी बात नहीं है जो हमारे लेखसे अधिक हो। उसकी औंधीसीधी नकलके सिवाय सेठजी और कुछ नहीं कर सके हैं। यदि कुछ अधिक कर सके हैं तो वे ही सब अट्टसट्ट बेसिर पैरकी बातें जिनका कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। बस, सिर्फ वे ही बातें सेठजीकी निजी चीजें हैं और शायद उन्हीं निजी चीजोंके कारण सेठजीको उक्त लेखके लिखनेका अभिमान है। सेठजीकी इतिहासज्ञतामें शायद बट्टा लग जाता यदि वे यह लिख देते कि इस लेखकी सामग्री नैनहितैषिकी लेखोंसे ली गई है। अस्तु। पाठक चाहें तो हितैषीकी पुरानी फाइलें निकालकर देख सकते हैं कि हमारा उक्त लेख भास्करके जन्मके लगभग एक वर्ष पहले प्रकाशित हो चुका था और अनुमान कर सकते हैं कि सेठजीका साहस कितना बड़ा चढ़ा है।
 'अखिलप्रबन्धं हर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तुभ्यम् ।'

(क्रमशः)



इतिहास-प्रसङ्ग ।

[इस स्तंभमें हम वे सब फुटकर इतिहाससम्बन्धी बातें प्रकाशित किय करेंगे जो हमें समय समय पर मालूम होती रहती हैं । हमारी समझमें इतिहास प्रेमियोंको इन बातोंसे बहुत लाभ होगा ।]

(१)

समन्तभद्र राजपुत्र थे ।



श्र वणबेलगुलमें पं० दौर्बलि जिनदास शास्त्रीके यहाँ एक अच्छा पुस्तकालय है । उसमें आस-मीमांसाकी एक प्रति है । उसके अन्तमें लिखा है:-“इति फणिमण्डलालंकारस्योरगपुराधिपसूनोः श्रीस्वामिसमन्तभद्रमुनेः कृतौ आसमीमांसायाम् ।” इससे मालूम होता है कि वे उरगपुरके राजाके पुत्र थे । यह शायद वही उरगपुर है जिसका कालिदासने रघुवंशमें उल्लेख किया है और जो चोलराज्यके अन्तर्गत है । फणिमण्डल भी शायद उसे ही कहते रहे हों । समन्तभद्र स्वामीके जिनशतक नामक काव्यमें एक चित्रबद्ध पद्य है जिससे मालूम होता है कि उनका गृहस्थाश्रमका नाम शान्तिवर्म था । यह नाम भी राजघरानोंके ऐसा है ।

(२)

रत्नकरण्डकी प्राचीनता ।

बहुत लोगोंका खयाल है कि रत्नकरण्डश्रावकाचार सुप्रसिद्ध समस्तभद्रस्वामीका बनाया हुआ नहीं है । कोई और समन्तभद्र नामके आचार्यका रचा हुआ होगा । परन्तु श्रीवादिराजसूरिने

अपने पार्श्वनाथकाव्यके प्रारंभमें समन्तभद्रका स्मरण करते समय उन्हें रत्नकरण्डका रचयिता बतलाया है । पार्श्वनाथ काव्य विक्रम-संवत् १०८३ में रचागया है । अर्थात् आजके समान उस समय भी रत्नकरण्डके कर्ता समन्तभद्र समझे जाते थे । वे श्लोक ये हैं:—

स्वामिनश्चरितं तस्य कस्य नो विस्मयावहं ।

देवागमेन सर्वज्ञो येनाद्यापि प्रदर्श्यते ॥ १७ ॥

अचिन्त्यमहिमा देवः सोऽभिवन्द्यो हितैषिणा ।

शब्दाश्च येन सिद्धयन्ति साधुत्वं प्रतिलंभिताः ॥ १८ ॥

त्यागी स एव योगीन्द्रो येनाक्षय्यसुखावहः ।

अर्थिने भव्यसार्थाय दिष्टो रत्नकरण्डकः ॥ १९ ॥

दूसरे श्लोकसे यह भी स्पष्ट होता है कि समन्तभद्रस्वामी वैयाकरण भी थे और उनका बनाया हुआ कोई ग्रन्थ था । पूज्यपादस्वामीने भी जैनेन्द्र व्याकरणमें उनके व्याकरणका उल्लेख किया है ।

(३)

धनंजय महाकवि ।

द्विसन्धानकाव्यके कर्ता प्रसिद्ध कवि धनंजयका समय निश्चित नहीं हुआ; पर ऐसा मालूम होता है कि वे विक्रमकी दशवीं शताब्दिके पूर्वमें हो चुके हैं । क्योंकि एक तो बालभारत बालरामायणादि नाटकोंके कर्ता राजशेखरने जो दशवीं शताब्दिके पूर्वार्धमें हो चुके हैं—उनकी प्रशंसा की है:—

द्विसन्धाने निपुणतां सतां चक्रे धनंजयः ।

यथा जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनंजयः ॥

इन्के सिवाय वादिराजसूरिने वि० सं० १०८३ में अपने

काव्यमें कहा है:—

अनेकभेदसंधानाः खनन्तो हृदये मुहुः ।
वाणा धनं जयोन्मुक्ताः कर्णस्येवाप्रियाः कथम् ॥

(४)

वाग्भट कवि ।

पं० दौर्बलि शास्त्रीके पुस्तकालयमें एक नेमिनिर्वाण काव्यकी प्रति है । उसके अन्तमें यह श्लोक है जो अन्य प्रतियोंमें नहीं मिलता—

अहिच्छत्रपुरोत्पन्नः ... भटकुलशालिन-
श्छादस्य सुतश्चक्रे प्रबन्धं वाग्भटः कविः ॥

इससे मालूम होता है कि वाग्भट कवि अहिच्छत्रपुरमें उत्पन्न हुए थे और उनके पिताका नाम 'छाद' था । काव्यानुशासनके कर्ता वाग्भट नेमिकुमारके पुत्र हैं । उन्होंने अपने ग्रन्थमें एक वाग्भटका उल्लेख किया है । वे वाग्भटालंकारके कर्ता हैं और उनके पिताका नाम 'सोम' है । वाग्भटालंकारमें आदियमकके उदाहरणमें 'नेमिनिर्वाण' के ६ ठे सर्गका ४६ वाँ श्लोक 'कान्तारभूमौ' आदि उद्धृत किया है । इससे काव्यमालके सम्पादकने लिखा था कि शायद नेमिनिर्वाण और वाग्भटालंकारके कर्ता एक ही हैं; परन्तु अब उक्त श्लोकसे निश्चय हो गया कि नेमिनिर्वाणके कर्ता दोनोंसे भिन्न तीसरे ही हैं । वाग्भटालंकारके कर्ता श्वेताम्बर हैं; परन्तु ये दिगम्बर मालूम होते हैं । यह स्मरण रखना चाहिए कि अष्टांगहृदय वैद्यके कर्ता वैद्य वाग्भट इन तीनोंसे भिन्न सिंहगुप्तके पुत्र हैं ।

(९)

धर्मभूषणके गुरु ।

श्रीधर्मभूषणयतिके गुरु श्रीवर्धमान भट्टारक थे ऐसा न्यायदीपिकाकी प्रतिके अन्तमें लिखा है। यह प्रति भी उक्त दौर्बलि शास्त्रीके पुस्तकालयमें है। इस प्रकार लिखा है:-“ श्रीमद्वर्धमानभट्टारकाचार्य-गुरुकारुण्यसिद्धसारस्वतोदयानां पदाब्जभृङ्गश्रीमदभिनवधर्मभूषणयति-विरचिता न्यायदीपिका । ” उक्त पुस्तकालयकी न्यायदीपिकाकी दूसरी प्रतिमें भी यही लिखा है।

(६)

अष्टाङ्गहृदयके कर्त्ताका परिचय ।

मैसूरके श्रीयुक्त पण्डित पद्मराजके पुस्तकालयमें अष्टाङ्गहृदय वैद्यक (वाग्भट) की एक कनड़ी प्रति है। उसके अन्तमें निम्न-लिखित दो श्लोक बहुत महत्त्वके हैं:-

यज्जन्मनः स्रकृतिनः खलुसिन्धुदेशे,
यः पुत्रवन्तमकरोद्भुवि सिंघ (ह) गुप्तम् ।
तेनोक्तमेतदुभयज्ञाभिषग्वरेण
स्थानं समाप्तमिति ॥ १ ॥

नमो वाडव (वाग्भट ?) तीर्थाय विदुषे लोकबन्धवे ।
येनेदं वैद्यवृद्धानां शास्त्रं संग्रह्य निर्मितम् ॥ २ ॥

इससे जान पड़ता है कि वाग्भट सिन्धुदेशके रहनेवाले थे और उनके पिताका नाम सिंहगुप्त था ।

(७)

हस्तिमल्लकविका स्थान ।

दौर्बलिशास्त्रीके भंडारके अंजनापवनंजय नाटकके अन्तर्लिखा है:—

“ श्रीमत्पाण्ड्यमहेश्वरे निजभुजां दण्डावलम्बीकृतं
कर्णाट।वनिमण्डलं पदनतानेकावनीशेऽवति ।
तत्प्रीत्यानुसरन्स्वबन्धुनिबहैर्विद्वद्भिराप्तैस्समं
जैनागारसमेतसन्तरानमे (?) श्रीहस्तिमल्लोऽवसत् ॥

इति गोविंदभट्टारस्वामिनः सूनुना श्रीकुमारसत्यवाक्यदेवरवल्लभ-
दयभूषणनामार्यमिश्राणामनुजेन कवेर्वर्धमानस्याग्रजेन कविना हस्ति-
मल्लेन विरचितम् । ’

पहले पद्यके चौथे चरणमें कोई अक्षर रह गया है इससे स्पष्ट नहीं हो सकता कि निवासस्थान कौनसा था । पाण्ड्यमहेश्वर नामक कर्णाटक नरेशके वह आधीन था । इससे समयका भी पता लग जायगा । हस्तिमल्ल कवि, श्रीगोविन्दभट्टके पुत्र थे । श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ और उदयभूषण ये चार कवि उनके बड़े भाई और गणरत्नमहोदधिके कर्ता वर्धमानकवि छोटे भाई थे । अर्थात् ये छहों भाई विद्वान् थे । इस बातका परिचय उनके विक्रान्तकौरवीय नाटककी प्रशस्तिसे भी लगता है । ये दाक्षिणात्य थे और इनके पिता देवागमस्तोत्रको सुनकर जैन हो गये थे ।

(८)

अर्हद्दास कवि ।

अर्हद्दासका ‘ मुनिसुव्रतकाव्य ’ एक सुन्दर काव्य है । दक्षिण

कर्णाटकमें इसके पठनपाठनका बहुत प्रचार है । मद्रासकी ओरिय-
ण्टल लायब्रेरीमें इसकी एक सटीक प्रति मौजूद है । टीका स्वयं
अर्हदासकी ही बनाई हुई है । उसका नाम है सुखबोधिनी । इस
काव्यका अपर नाम ' काव्यरत्न ' है । इसकी प्रशस्तिमें लिखा
है कि कविने आशाधरके उपदेशसे जैनधर्म ग्रहण किया था:—

मिथ्यात्वकर्मपटलैश्चिरमावृते मे
युग्मे दृशोः कुपथयानानिदानभूते ।
आशाधरोक्तिविलसञ्जनसंप्रयोगै-
रच्छीकृतेद्य पृथुसत्पथमाश्रितोस्मि ॥

इससे अर्हदासका समय भी निश्चित हो जाता है ।

(९)

महाकवी विरनन्दिका समय ।

चन्द्रप्रभकाव्यके कर्ता वीरनन्दिका समय अभीतक निश्चित नहीं
है; पर वे वादिराजंसूरिके पहलेके अवश्य हैं । क्योंकि उन्होंने
पार्श्वनाथचरितमें उनका उल्लेख किया है:—

चन्द्रप्रभाभिसंबद्धा रसपुष्टा मनः प्रियम् ।
कुमुद्रतीव नोधत्ते भारती वीरनन्दिनः ॥ ३० ॥

उनके चन्द्रप्रभचरित काव्यका भी इसमें स्पष्ट उल्लेख है ।

(१०)

मदनकीर्तिप्रबन्ध ।

विद्वद्रत्नमालामें हमने पं० आशाधरके विषयमें एक विस्तृत
लेख प्रकाशित किया है । उसमें पाठकोंने पढ़ा होगा
कि पं० आशाधरके समयमें वादीन्द्र विशालकीर्ति, मदन-

कीर्ति यतिपति और उदयसेन मुनि आदि कई दिगम्बर जैन विद्वान् थे। इनमेंसे विशालकीर्तिने आशाधरके पास षट्दश और न्याय शास्त्रोंका अध्ययन किया था। मदनकीर्ति विशालकीर्ति शिष्य थे। इन मदनकीर्तिके उल्लेख भी आशाधरने अपने ग्रन्थोंके प्रशस्तिमें किया है। मदनकीर्तिने आशाधरको प्रज्ञापुंज कहा था-
 “ प्रज्ञापुञ्जोसि च योऽभिहतो मदनकीर्तियतिपतिना । ” मदनकीर्तिको यतिपति कहा है। इससे मालूम होता है कि वे जैनसाधु थे। इन्हीं मदनकीर्तिके विषयमें एक लेख ‘चतुर्विंशतिप्रबन्ध’ नामक ग्रन्थमें हमने अभी हाल ही पढ़ा है। ‘चतुर्विंशतिप्रबन्ध’ श्वेताम्बराचार्य राजशेखरका बनाया हुआ संस्कृत ग्रन्थ है। इसमें प्राचीन आचार्यों और विद्वानोंके २४ चरित हैं। ग्रन्थ वि० संवत् १४०९ का बना हुआ है। गायकवाड़ सरकारने इसका गुजराती अनुवाद प्रकाशित करवाया है। इस कथासे मालूम होता है कि मदनकीर्ति अपने चरित्रसे गिर गये थे। कथाका सारांश यह है:-
 “ उज्जयिनीमें विशालकीर्ति नामक दिगम्बर साधु थे। उनका मदन कीर्ति नामक शिष्य था। उसने चारों दिशाओंके वादियोंको पराजित करके ‘महाप्रामाणिक’ पदवी प्राप्त की और अपने गुरुकी कीर्ति फैलाई एक बार उसने दक्षिणात्य वादियोंको जीतनेकी इच्छा प्रकट की गुरुके रोकने पर भी वह दक्षिणकी ओर चल दिया और बड़े बड़े विद्वानोंको पराजित करके कर्णाटकमें पहुँचा। वहाँ विजयपुरनरेश कुन्तिभोज राजाकी सभामें जाकर उसने अपने पाण्डित्यसे राजाको मोहित कर लिया। राजाने उसे अपने महलके पांस ही ठहरनेको

स्थान दिया और कहा कि आप हमारे पूर्वजोंके चरितका वर्णन करनेवाला एक ग्रन्थ रच दीजिए । मदनकीर्तिने कहा, मैं १०० श्लोक प्रतिदिन रच सकता हूँ; पर उनके लिखनेवालेका प्रबन्ध हो जाना चाहिए । राजाने अपनी पुत्री मदनमंजरीको यह काम सौंप दिया और वह परदेकी ओटमें बैठकर ग्रन्थ लिखने लगी । कुछ समयमें दोनों परस्पर मोहित हो गये और एक दूसरेकी प्राप्तिका उपाय करने लगे । अब ग्रन्थरचनामें बाधा पड़ने लगी । श्लोक कम रचे जाने लगे । राजाको सन्देह हो गया । उसने एक दिन छुपकर देखा । उस समय मदनकीर्ति अपनी प्रणयिनीको सुन्दर सुन्दर श्लोक कहकर मना रहा था । राजाको विश्वास हो गया । उसे बड़ा क्रोध आया । उसने तत्काल ही अपने स्थान पर पहुँचकर मदनकीर्तिको बुलाया और उस श्लोकका अर्थ पूछा । मदनकीर्ति ताड़ गया, इसलिए तत्काल सँभलकर बोला “दो दिनसे मेरी आँखें आ रही हैं, इसलिए उनका अनुनय करनेके लिए मैंने यह पद्य बनाया था ।” आश्चर्य यह कि आँखोंके पक्षमें भी उक्त श्लोक गीक बैठ गया । राजाको उसके इस बुद्धिवैचित्र्यसे हृदयमें आनन्द हुआ; पर अपकृत्यका खयाल करके उसने उसे मार डालनेकी आज्ञा दे दी । मदनमंजरीने यह समाचार सुन लिया । वह तत्काल ही अपनी ३२ सखियोंको साथ लेकर आई और अपने प्यारेके साथ परनेको तैयार हो गई ! यह देख मंत्रियोंने राजाको समझाया कि इसमें आपका ही दोष है जो एक युवा और युवतीको समीप रहनेका अवसर दिया । युवावस्थाका यह स्वभाव ही है । अब आप क्रोध

छोड़ दें और पुत्री इसीको दे दें । ऐसा ही हुआ; राजाने मदनकी-
 र्तिके साथ अपनी लड़कीका विवाह कर दिया । मदन भोगी बनकर
 रहने लगा । कुछ समयमें गुरु विशालकीर्तिको यह समाचार
 मिला । उन्होंने अपने चार शिष्योंको इसे समझानेके लिए भेजा ।
 शिष्योंने आकर बहुत कुछ समझाया, पर फल न हुआ । शिष्य
 लौट गये; उनके साथ मदनने कुछ श्लोक लिखकर रख दिये ।
 उनका अभिप्राय यह था— ‘ प्रियादर्शन ही सारभूत दर्शन है;
 और दर्शन किस मतलबके? इस दर्शनमें राग होने पर भी चित्त
 निर्वाण प्राप्त करता है । होठोंके डसनेसे चकित हुई, हाथ छुड़ानेका
 प्रयत्न करती हुई, कोपसे भौंहेँ नचाकर बोलती हुई, चारुचन्द्रवदनमें
 सीत्कार करती हुई मानिनीका जिसने चुम्बन किया उसने ही
 अमृत प्राप्त किया; मूर्ख देवताओंने सागर मंथन करनेका परिश्रम
 व्यर्थ ही किया ।’ इत्यादि । ये श्लोक बाँचकर गुरु स्तब्ध हो
 रहे । मदनकीर्तिने अनेक प्रकारके भोगोंका अनुभव किया । ”

आशाधर विक्रमसंवत् १३०० के लगभग हुए हैं और यही
 समय मदनकीर्तिका है । अतः चतुर्विंशतिप्रबन्ध इनसे सिर्फ १००
 वर्ष पीछेका बना हुआ है । विद्वानोंको इस विषयमें और भी छान-
 बान करना चाहिए और पता लगाना चाहिए कि इस कथामें स-
 त्यांश कितना है । यह बात स्मरण रखनेकी है कि श्वेताम्बर
 होने पर भी लेखकने मदनकीर्तिके प्रबन्धमें कोई बात ऐसी नहीं
 लिखी है जो दिगम्बर सम्प्रदाय पर खास आक्षेप करनेवाली हो ।

(११)

वादिराजसूरिका एक अप्रसिद्ध ग्रन्थ ।

एकीभाव, पार्श्वनाथकाव्य, यशोधरकाव्य आदिके कर्ता वादिराज बड़े भारी नैयायिक थे, यह बात प्रसिद्ध है। इसी लिए उन्हें ' वादिराजमनुतार्किकसिंहः ' कहा है; परन्तु अभी तक उनका कोई न्यायग्रन्थ नहीं मिला था। अब उनके एक न्यायग्रन्थका पता लगा है जो भट्टकलंकदेवके ' न्यायविनिश्चय ' की टीका है। इसका नाम है ' न्यायविनिश्चयविवरण ' अथवा ' न्यायविनिश्चयकी तात्पर्यावद्योतिनी व्याख्यानरत्नमाला '। यह ग्रन्थ आराके सिद्धान्तभवनमें मौजूद है। पूज्य पं. पत्रालालजीके पास जो प्रशस्ति संग्रह है उसके देखनेसे मालूम हुआ कि यह वादिराजसूरिका ही है। यद्यपि प्रशस्तिमें वादिराजका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इसके अन्तमें लिखा है:—

“ श्रीमत्सिंहमहीपतेः पारिषदि प्रख्यातवादीनातिः—
स्तर्कन्यायतमोपहोदयगिरिः सारस्वतः श्रीनिधिः ।
शिष्य श्रीमतिसागरस्य विदुषां पत्युस्तपश्रीभृताम्
भर्तुः सिंहपुरेश्वरो विजयते स्याद्वादाविद्यापतिः ।

इत्याचार्यवर्यस्याद्वादाविद्यापतिविरचितायां न्यायविनिश्चयतात्पर्यावद्योतिन्यां व्याख्यानरत्नमालायां तृतीयप्रस्तावः समाप्तः । ”

स्याद्वादाविद्यापति वादिराजका उपनाम है। सिंहमहीपति या चौलुक्य जयसिंहकी सभाके वे प्रसिद्ध वादी थे। मतिसागर मुनिके शिष्य थे और सिंहपुरके स्वामी थे। इन विशेषणोंसे जरा भी शंका नहीं रहती है कि यह ग्रन्थ वादिराजका ही है। विद्वद्रत्नमालामें जो ' वादिराजसूरि ' शीर्षक लेख है उसके पद-

१ देखो, विद्वद्रत्नमाला पृष्ठ १४१। २ देखो श्रवणबेलगुलकी मल्लिषेणप्रशस्ति ।

नेसे यह बात और भी निश्चित हो जायगी। मंगलाचरणमें अपने गुरु मतिसागर, गुरुके गुरु श्रीपाल और गुरुभाई दयापालका भी ग्रन्थकर्ताने स्मरण किया है। प्रारंभमें लिखा है कि इस ग्रन्थपर यद्यपि अनेक टीकायें हैं; परन्तु वे सर्वसाधारणके लिए अगम्य हैं, इस लिए मैं यह अतिशय सरल वृत्ति बनाता हूँ। यह वृत्ति छपकर प्रकाशित होने योग्य है। कठिनाई यह है कि यह आराके सिद्धान्त-भवनमें है इसलिए सहज ही न मिलेगी और यदि मिल भी जायगी तो नियमानुसार १९ दिनमें वापिस कर देनी पड़ेगी।

(१२)

कुछ अप्रसिद्ध ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ता।

अनेक शिलालेखों और प्रशस्तियोंसे ऐसे अनेक ग्रन्थों और ग्रन्थकर्ताओंका पता लगता है जो बिल्कुल अप्रसिद्ध हैं। मल्लिषेण प्रशस्तिमें आचार्य वज्रनन्दिके नवस्तोत्रका उल्लेख है:—

न वः स्तोत्रं तत्र प्रसजाति कवीन्द्राः कथमपि

प्रणामं वज्रादौ रचयत परं नन्दिनि मुनौ ।

नवस्तोत्रं येन व्यरचि सकलार्हत्प्रवचन-

प्रपञ्चान्तर्भावप्रवणवरसन्दर्भसुभगम् ॥

जान पड़ता है यह 'नवस्तोत्र' देवागम जैसा होगा, क्योंकि उसमें समस्त अर्हत्प्रवचनके भाव मौजूद हैं। क्या ये वे ही वज्रनन्दि हैं जो पूज्यपादके शिष्य थे और जिन्हें देवसेनने द्राविडसंघका स्थापक बतलाया है? इसी प्रशस्तिमें सुमतिदेवके सुमतिसप्तकका उल्लेख है:—

सुमतिदेवममुंस्तुत येन वः सुमतिसप्तकमाप्ततया कृतं
परिहृतापदतच्चपदार्थिनां सुमतिकोटिविवर्ति भवार्तिहृत् ॥

[शेष आगे]

विविध प्रसङ्ग ।

१ एक इतिहासज्ञ विद्वान्का संदेश ।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० विन्सेंट स्मिथने जैनसमाजके लिए जो सन्देश भेजा है वह इस अंकके प्रारंभमें दिया गया है । हम अपने समाजके नेताओंका और धनी महाशयोंका ध्यान उसकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित करते हैं । वास्तवमें अब समय आगया है कि हम लोग अपना एक स्वतंत्र पुरातत्त्व विभाग खोलें और अपने प्राचीन इतिहासको सर्वांगपूर्ण बनानेके साधन तैयार कर दें । इसकी आवश्यकताके लिए साहबने जो जो बातें कहीं हैं वे बहुत ही महत्त्वकी हैं । उनसे मालूम होता है कि जब तक जैनविद्वानोंका ध्यान इस ओर न जायगा और जैनसमाजके धनी इस काममें उत्साह न दिखलायेंगे तब तक जिन बातोंकी खोजकी आवश्यकता है वह न हो सकेगी । यह ठीक है कि हमारी सरकार अपने पुरातत्त्वविभागकी ओरसे बहुत कुछ प्रयत्न करती है और उसके द्वारा भी बहुतसी नई नई बातोंका पता लगता जाता है; परन्तु यह काम इतना बड़ा है और सरकारका कार्यक्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसमें जैनइतिहासका भाग प्रायः नहींके बराबर होता है । इस लिए जैनसमाजको खुद चाहिए कि वह एक ऐसी संस्था स्थापित कर दे जिसके द्वारा प्राचीन स्थान खोदे जावें, जमीनके नीचे दबे हुए मठ मन्दिरों प्रतिमाओं और शिलालेखोंका पता लगाया जावे, पुराने तीर्थस्थानोंकी खोजें की जावें, प्राचीन ग्रन्थ तलाश किये जावें और जैनराजाओंके सिक्के

एकट्टे किये जावें । इस काममें यदि जैनविद्वान् नियत किये जावेंगे और वे जैनदृष्टिसे पुरानी बातोंकी खोज करेंगे तो इतिहासकी बड़ी बड़ी गाँठें खुल जावेंगी । जैनधर्मकी भीतरी बातोंको जाननेवाले इतिहासज्ञ लोग जो बड़ी बड़ी भूलें कर बैठते हैं जैसे जैनप्रतिमाओंको बुद्धप्रतिमा, जैनमठोंको बौद्धमठ, जैनधर्मकी यक्षयक्षियोंको बौद्धदेवदेवियाँ समझ लेना आदि, वे भूलें जैनविद्वानोंके द्वारा बहुत कम होंगी । हम विन्सेंट स्मिथ साहबके इस कथनसे सहमत हैं कि जैनसमाजके धनी रूपया खर्च कर सकते हैं और यदि वे चाहें तो उनके लिए इस काममें लाख दो लाख रूपया खर्च कर डालना कोई बड़ी बात नहीं है । पाठकोंको मालूम है कि बम्बईके पारसी धनिक टाटाके धर्मका या जातिका पटनासे कोई भी सम्बन्ध नहीं है, तो भी वे पटनाके खण्डहरोंकी खुदाईके लिए २५ हजार रूपया वार्षिक खर्च कर रहे हैं और वह केवल इसलिए कि भारतवर्षकी पुरानी राजधानी पटना या पाटलिपुत्रके विषयमें लोगोंको कुछ विशेष बातें मालूम हों । तब क्या जैनसमाजके धनिक श्रवणबेलगुलमें चक्रवर्ती राजा चन्द्रगुप्त और पूज्य भद्रबाहुके स्मारक ढूँढनेके लिए, कोशा-म्बीमें अपने परमपूज्य तीर्थके प्राचीन चिह्न खोजनेके लिए, भगवान् महावीरके जन्म और निर्वाणस्थलोंका वास्तविक पता पानेके लिए, पाण्ड्य और द्राविडदेशके ह्यूनसांगके समयके हजारों जैनमन्दिरोंका अनुसन्धान करनेके लिए और इसी तरहके दूसरे कामोंके लिए जिनसे जैनधर्मकी कल्पनातीत प्रभावना हो सकती है, लाख दो लाख रूपया खर्च कर नहीं सकेंगे ? विचार करके देखा जाय तो

यह काम मन्दिरप्रतिष्ठादि कार्योकी प्रभावनासे हजार गुणी प्रभावना करनेवाला है और यदि एक ही दो प्रतिष्ठा करानेवाले सोच लें तो यह स्थायीरूपसे चल सकता है ।

२ जैनसमाजमें इतिहासज्ञोंका अभाव ।

भारतवर्षके प्राचीन इतिहासके सबसे अधिक साधन जैनपुस्तकालयों, जैनग्रन्थों, जैनमन्दिरों, और जैनलेखोंसे प्राप्त हुए हैं; परन्तु खेदका, नहीं नहीं लज्जाका विषय है कि जैनसमाजमें इतिहासके जाननेवालोंका एक तरहसे सर्वथा अभाव दिखलाई देता है । समूचे जैनसमाजमें—तेरह लाख जैनोंमें—कई सौ ग्रेज्युएटों और पण्डितोंमें एक भी ऐसा विद्वान् नहीं है जिसे हम इतिहासज्ञ कह सकें और जिसके लिए हम कुञ्च अभिमान कर सकें । इतिहासज्ञ होना तो बहुत बड़ी बात है; अभीतक हमारे यहाँ वास्तविक इतिहासका स्वरूप समझनेवाले भी नहीं दिखते । साधारण मनोरंजन करनेवाली कथाओंमें और इतिहासमें वे बहुत ही थोड़ा भेद समझते हैं । उन्हें नहीं मालूम है कि प्रकृत इतिहास क्या है, उसके तैयार करनेवालेमें कितना विशाल ज्ञान और नाना भाषाओंका पाण्डित्य होना चाहिए और वह कितने परिश्रमसे तैयार होता है । समय आ गया है कि अब हम अपनी इस कमीको पूर्ण करनेकी चिन्ता करें और दश पाँच इतिहासके विद्वान् तैयार करें । यों तो इतिहासके विद्यार्थीको समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र, शिल्पशास्त्र, स्थापत्य, भास्कर्य, आदि सभी विषयोंका थोड़ा बहुत ज्ञान चाहिए; परन्तु सबसे मुख्य बात है कि उसे विविध भाषाओंका और लिपियोंका ज्ञाता होना चाहिए । कमसे

कम अँगरेजी, संस्कृत, प्राकृत और पालीका ज्ञान तो उसे अवश्य होना चाहिए । भारतवर्षके विषयमें जिन देशी और विदेशी विद्वानोंने अबतक जितना कुछ लिखा है वह सब पढ़ जाना चाहिए और इसके बाद इतिहासकी खोजमें हाथ लगाना चाहिए । इतनी योग्यताके बिना कोई प्रकृत इतिहासज्ञ नहीं बन सकता है । इसलिए जैनसमाजको चाहिए कि वह कुछ ऐसे विद्यार्थियोंको जो इस विषयका शौक रखते हों और संस्कृतके साथ बी. ए. तक पढ़ें हों खास वृत्तियाँ देकर इतिहासका अध्ययन करावे । इतिहासके एम. ए. हो जानेपर उन्हें कुछ समय इतिहासज्ञ विद्वानोंके पास रखे जिसमें वे अपने अनुभवको बढ़ावें और उसी समय अनेक भाषाओंका ज्ञान भी सम्पादन करें । इसके बाद उन्हें अपने पुरातत्त्वविभागमें नियत कर देवे और उनसे वह काम लेवे जिसके लिए स्मिथ साहब प्रेरणा कर रहे हैं ।

३ शिक्षितोंको इतिहासका अध्ययन करना चाहिए ।

परन्तु इस तरहके दशपाँच इतिहासज्ञ तैयार कर लेनेसे ही काम न चलेगा; अन्यान्य शिक्षित जनोंको भी इस ओर ध्यान देना चाहिए । जो सज्जन कालेजोंके प्रोफेसर, स्कूलोंके अध्यापक या वकील आदि हैं और जो संस्कृत तथा अँगरेजीकी योग्यता रखते हैं उन्हें चाहिए कि अवकाशके समय इस विषयकी ओर लक्ष्य दें और धीरे धीरे अपना ज्ञान बढ़ाते जायँ । शुरूमें उनके द्वारा नई खोजें भले ही न हों परन्तु सर्व साधारण लोगोंमें इतिहासके ज्ञानकी तो बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है ।

यदि वे शुरू शुरूमें इतना ही करें कि अँगरेजी आदि भाषाओंमें जैन-धर्म और इतिहासके सम्बन्धमें जो लेख निकला करते हैं उनके अनुवाद ही देशभाषाओंके द्वारा सर्वसाधारण तक पहुँचानेका प्रयत्न करने लगे तो बहुत लाभ हो सकता है । आज कल जैनधर्म और इतिहासकी आलोचनामें अँगरेजीमें इतने लेख निकलते हैं कि यदि सिर्फ उन्हींका अनुवाद प्रकाशित किया जाय तो एक अच्छे मासिक पत्रका काम चल सकता है । अनुवाद करते करते ही उनका अनुभव बढ़ जायगा और वे इतिहासके मौलिक लेख लिखनेमें भी समर्थ हो सकेंगे । हमारी पण्डितमण्डलीको भी इस ओर कुछ कृपा करनी चाहिए । उनके लिए एक विशाल कार्यक्षेत्र पड़ा हुआ है । संस्कृत प्राकृतके ग्रन्थोंका यदि वे अच्छी तरह अध्ययन करें, उनकी प्रशस्तियाँ मंगलाचरण आदि पढ़ें, और उनमें जिन जिन आचार्यों और विद्वानोंका उल्लेख मिलता है उनपर विचार करें तो अँगरेजी आदि भाषाओंकी सहायताके बिना भी वे जैनधर्मके समस्त संघोंका गच्छों और आचार्योंका एक श्रृङ्खलाबद्ध इतिहास तैयार कर सकते हैं जिसकी कि बहुत बड़ी आवश्यकता है ।

४ इतिहासका उद्देश और लाभ ।

हमारे यहाँ इतिहासके विषयमें बहुतसे भ्रामक विचार प्रचलित हो रहे हैं । इसका कारण यह है कि लोग वास्तविक इतिहासका स्वरूप नहीं जानते । यहाँ पर हम अध्यापक श्रीयुक्त यदुनाथ सरकारके व्याख्यानका—जो उन्होंने वर्द्धमानसाहित्यसम्मेलनमें पढ़ा था—को अंश उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते । वे कहते हैं—“इतिहास

का उद्देश्य क्या है, यह जानलेनेसे इतिहास लिखनेकी श्रेष्ठ प्रणाली जानी जासकती है। जो सच्चा इतिहास है वह अतीतको सजीव बनाकर आँखोंके सामने खड़ा कर देता है और हम मानों उसी बहुत प्राचीन समयके लोगोंके शरीरमें प्रवेश करके उन्हींके विचारोंसे विचारने लगते हैं और उनके सुखःदुख आशा भय आदिका अपने हृदयमें अनुभव करने लगते हैं। इस तरह अतीत कालके सम्बन्धमें अविकल पूर्णाङ्ग सत्यकी प्राप्ति करना ही इतिहासका प्रकृत उद्देश्य है। इतिहास सत्यकी मजबूत पाषाणमय दीवालपर खड़ा रहता है। यदि उससे सत्य निर्धारित न हुआ, यदि अतीत कालकी एक मनमानी मूर्ति खड़ी करके अथवा आंशिक मूर्ति बनाकर ही हम शान्त हो गये, तब तो कहना होगा कि हम कल्पनाके ही जगतमें रह गये। इसके बाद उस विषयमें हम चाहें जो लिखें या विश्वास करें वह सब बालूकी दीवाल पर तीनतला मकान बनानेके तुल्य होगा। सत्य निश्चित करनेकी पद्धति क्या है? सबसे पहले तो अपने मनको इस कार्यके योग्य और उपयोगी बनाना चाहिए। यश, धन, प्रतिष्ठा और लाभकी आशा दूर करके, अपने अन्तरंगका अनुराग विराग दमन करके, पूर्वके सब संस्कार त्याग करके पक्की प्रतिज्ञा करन चाहिए कि 'मैं आज अपनेको सत्यपर समर्पण कर दूँगा, मैं सत्यको समझूँगा, सत्यको पूजूँगा और सत्यकी ही खोज करूँगा।' सत्य चाहे प्रिय हो चाहे अप्रिय हो, लोग मानें या न मानें, लोग हँसी करे या निन्दा करें, उसको प्रकाश करना ही चाहिए। बस, इतिहासज्ञोंकी यही प्रतिज्ञा होती है।" आगे चलकर अध्यापक

महाशय कहते हैं—“ इतिहास काव्य नहीं है । चित्तविनोदक ललित आख्यान अथवा सूखी छानवीन ही इसका अन्तिम फल नहीं है । अध्यापक ‘ सीली ’ ने अच्छी तरह सिद्ध करके दिखाया है कि समाजनेता और राष्ट्रनेताके लिए इतिहास सर्वश्रेष्ठ शिक्षक, पथप्रदर्शक, और महान् बन्धु है । इतिहासकी सहायतासे भूतकालका स्वरूप जानकर उसी ज्ञानको वर्तमानमें प्रयोग करना होगा । बहुत प्राचीन कालमें हमारे पूर्वज किन कारणोंसे उठे; किन कारणोंसे गिरे, राज्य समाज धर्म किस प्रकार गठित हुए, वे किस कारण नष्ट हो गये, इन सब तत्त्वोंको समझकर हमें अपने सजीव समाजकी गति बदलना होगी । भूतकालसे उद्धार किया हुआ सत्य और दृष्टान्तोंकी दीपशिखा हमारे मार्गमें रोशनी डालेगी । यही इतिहासचर्चाका अन्तिम फल है । ” आशा है कि हमारे पाठक इन अवतरणोंसे इतिहासके स्वरूपको बहुत कुछ समझ लेंगे और इतिहासके नामसे जो असत्य बातोंका प्रचार करते हैं उनसे बचे रहेंगे ।

५ मौर्य चन्द्रगुप्तका जैनत्व ।

भास्कर बड़ी धूमधामके साथ मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्तके जैनत्वका ढंका पीट रहा है और अपनी ओरसे निश्चय कर चुका है कि वे निस्सन्देह जैन थे । पिछले अंकोंमें तो उसने उनके जैनत्व सिद्ध करनेके लिए कुछ चेष्टा भी की थी; परन्तु अब विन्सेट स्मिथ साहबके प्रसिद्ध इतिहासकी नवीन आवृत्ति प्रकाशित हो जानेसे तो वह उस चेष्टाकी भी आवश्यकता नहीं समझता है । उसे यह बात एक स्वयांसिद्ध

सिद्धान्तके समान जान पड़ने लगी है और इस कारण वह इसे युक्तिकी कसौटी पर कसना निरर्थक तथा पिछपेषण तुल्य समझता है। उसने इस चौथी किरणमें हमें उपदेश किया है कि “प्रेमीजी ! अच्छा होता यदि आप विन्सेंट स्मिथकी अभी हालकी छपी नवी आवृत्ति मँगाकर किसी बी. ए. से चन्द्रगुप्तके इतिहासका अनुवाद कराकर समझलेते। उन्होंने चालीस वर्षकी सपरिश्रम अविश्रान्त ऐतिहासिक पर्यालोचनासे अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा अपनी इतिहास पुस्तकमें यह सिद्ध कर दिखाया है कि चन्द्रगुप्त जैन थे और अन्तमें इन्होंने मुनिवृत्ति धारण कर इस लोकको छोड़ा है।” हमने तत्काल ही उसके उपदेशको माथे पर चढ़ाया और विन्सेंट साहबके इतिहासमें मौर्य चन्द्रगुप्तके तथा जैनधर्मके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा था उसका अनुवाद अपने मित्र बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए. से करवा मँगाया। वह इसी अंकमें अन्यत्र प्रकाशित है। इसके सिवाय विन्सेंट स्मिथने जैन समाजके लिए जो संदेश भेजा है और उसमें चन्द्रगुप्तके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है उसका अनुवाद भी अन्यत्र दिया है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि विन्सेंट साहबके उक्त दोनों स्थलोंको विचार पूर्वक पढ़ें और फिर उनके अभिप्रायका मिलान भास्करके विचारोंके साथ करें। विन्सेंट ए. स्मिथ साहब चन्द्रगुप्तमौर्यके जैनत्वकी संभावना स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि जैनतत्त्वकी कथाके विरुद्धमें जो जो शंकायें थीं वे सब हल हो गई हैं; और इस कारण मुझे विश्वास होता है कि चन्द्रगुप्त जैनसाधु हो गये थे।

और यह कथा सत्य पर निर्धारित जान पड़ती है; परन्तु इससे वे यह नहीं समझते कि चन्द्रगुप्तका जैनत्व सिद्ध होगया और अब इस विषयमें प्रयत्न करनेकी कोई जरूरत नहीं है। वे अपने जैनोंके संदेशमें इस विषयके खोज करनेकी—चन्द्रगुप्तके जैनत्वकी कथा कहाँतक ठीक है इसके जाँच करनेकी—बहुत बड़ी आवश्यकता प्रकट करते हैं और जैनविद्वानोंको अपनी दृष्टिसे वादविवाद करनेके लिए आह्वान करते हैं। इससे साफ़ मालूम हो जाता है कि भास्करके सम्पादक महाशयका विश्वास विन्सेंट स्मिथ साहबसे भी बहुत आगे बढ़ गया है। स्मिथ साहबके इतिहासमें वे अश्रान्तपरिश्रमके ऐतिहासिक प्रमाण और पर्यालोचन भी कहीं दिखलाई नहीं दिये जिनका भय दिखलाकर, सहयोगी हम पर तानें कसता है। इससे तो यही मालूम पड़ता है कि सम्पादक महाशयने विन्सेंट स्मिथ साहबके इतिहासकी बात कहींसे सुन—सुना ली होगी; उसे किसीसे अनुवाद कराके पढ़ा भी न होगा। यदि पढ़ लिया होता तो इस तरह चन्द्रगुप्तके जैनत्वकी बातको वे स्वयंसिद्ध सिद्धान्त न समझ लेते। भारतवर्षका सुप्रसिद्ध सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य यदि जैन सिद्ध हो जाय तो इसके समान प्रसन्नताकी और जैनधर्मके गौरवकी बात और क्या हो सकती है? इसको कौन नहीं चाहता? परन्तु केवल हमारे कहनेसे ही तो दूसरे नहीं मान सकते हैं? जैनोंके माननेके लिए तो इतना ही काफी है कि हमारे यहाँ इस विषयकी कथा मिलती है; पर हमारी कथा दूसरोंके लिए तो सर्वज्ञकथित नहीं हो सकती है? दूसरे तो अन्यान्य प्रमाण भी चाहते हैं। उन

प्रमाणोंके संग्रह करनेके लिए भी स्वयं भी कुछ प्रयत्न करना चाहिए; औरोंकी पूँजी पर—औरोंकी शक्ति पर—व्यर्थकी उछलकूद मचाना और किसीको बुरा भला कहना ही इतिहासज्ञता नहीं है। और थोड़ी देरके लिए यह भी मान लिया जाय कि चन्द्रगुप्तका जैनत्व सर्वथा सिद्ध हो चुका है, उसके लिए युक्तियोंकी कमी नहीं; तो भी आप जिस भाषामें अपना पत्र निकालकर इतिहासज्ञ बन रहे हैं उसके पाठकोंको तो वे युक्तियाँ मालूम होनी चाहिए, आपके जान लेनेसे ही क्या होता है! भास्करमें जो कुछ लिखा गया है उसमें तो कुछ भी दम नहीं है।

७ जैनसिद्धान्तभवनकी चर्चा ।

हर्षका विषय है कि सहयोगी जैनमित्रका ध्यान भी आराके जैन-सिद्धान्त भवनकी ओर आकर्षित हुआ है। उसने भी भवनके कार्य-कर्त्ताओंकी शिथिलता बतलाई है और भवनको आरामें नहीं किन्तु काशीमेंही प्रतिष्ठित करनेकी आवश्यकता बतलाई है। सहयोगीका यह कथन विशेष ध्यान देने योग्य है कि स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी जो दानपत्र लिख गये हैं उसमें भवनको काशीमें ही स्थापित करनेकी बात लिखी है। यदि यह सही है तो फिर क्या कारण है कि बाबू साहबकी इच्छाके विरुद्ध भवनके लिए आरा जैसी छोटीसी जगह तजबीज की गई! क्या कोई यह बतला सकता है कि भवनका काशीकी अपेक्षा आरामें रहना विशेष लाभकारी होगा? कहाँ काशी और कहाँ आरा! आराका भवन आराका ही होकर रह जायगा; पर काशी--विद्यापीठमें वह सारे भारतवर्षका बन जायगा

और सारे भारतका बनानेके लिए ही स्वर्गीय बाबूसाहबने उसके स्थापित करनेका मनोरथ किया था । भवनके टूस्टियोंको इस ओर ध्यान देना चाहिए और भवनके संचालकोसे दरयाफ्त करना चाहिए कि क्या कारण है जो वे भवनका स्थायी मन्दिर आरामें बनाना चाहते हैं ।

यह भी पूछना चाहिए कि उसके सूचीपत्रादि बनानेका प्रबन्ध अबतक क्यों न किया गया ? जैनसमाज चाहता है कि भवनमें ग्रन्थोंका संग्रह बराबर होता रहे, सूचीपत्र सर्वसाधारणको देखनेके लिए मिले, नये नये ग्रन्थोंकी सूचना मिलती रहे, ग्रन्थोंकी प्रशस्तियाँ और महत्त्वकी बातें प्रकट करनेवाली रिपोर्टें छपवाई जावें, ग्रन्थोंकी नकल करानेका पूरा पूरा प्रबन्ध हो, लागतसे पाँच या दश रुपया सैकड़ा अधिक मूल्य पर जो चाहे उसे ग्रन्थ लिखाकर भेज दिये जावें, आवश्यकता होने पर चाहे जिस ग्रन्थकी प्राचीन प्रति उचित शर्तों पर बाहरके भाई भी देखनेके लिए मँगा सकें, ग्रन्थप्रकाशकों या सम्पादकोंको अधिक दिनोंके लिए ग्रन्थोंकी प्रतियाँ देनेका प्रयत्न किया जाय, पत्रोत्तर समय पर दिये जानेका प्रबन्ध हो, प्रश्न करनेवालेकी बातोंका संतोषयोग्य पूरा पूरा उत्तर दिया जाय और भवनमें बैठकर हर किसीको ग्रन्थ देखनेका सुभीता दिया जावे । इन सब बातोंका प्रबन्ध हुए विना न जैनसमाज प्रथेष्ट लाभ उठा सकता है और न स्वर्गीय बाबूसाहबकी इच्छा पूर्ण हो सकती है ।

७ भवन और पुरातत्त्वविभाग ।

क्या ही अच्छा हो यदि जैनसिद्धान्तभवनकी ही एक 'पुरातत्त्वप्रकाशिनी' शाखा खोल दी जावे और उसके द्वारा वह काम किया जाय जिसके लिए श्रीयुक्त विन्सेट स्मिथ साहबने धनिक जैनोंसे आग्रह किया है। क्योंकि पुरातत्त्वका कार्य भी भवनके उद्देश्योंसे पृथक नहीं है। सम्मिलित संस्था रहनेसे काम भी सुभीतेके साथ होगा। भवनके कार्यकर्ता यदि प्रयत्न करेंगे तो हमारी समझमें इसके लिए जैनसमाजसे सहायता भी अच्छी मिलेगी। भवनके लिए जो यथेष्ट सहायता नहीं मिलती है इसका कारण सिवाय इसके और कुछ नहीं है कि उसके संचालक न तो उसका प्रबन्ध सुधारते हैं और न सहायताके लिए प्रयत्न ही करते हैं।

८ श्रुत पञ्चमी पर्व ।

ज्येष्ठ सुदी ९ फिर आ गई। अवसर आगया कि प्रतिवर्षकी नाई हम फिर भी अपने पाठकोंको इसकी चेतावनी दे दें। पर इसका फल क्या होता है? यही कि दशवीस स्थानोंमें शास्त्रोंके वेष्टन बदल दिये जाते हैं और सरस्वतीकी पूजा कर दी जाती है। इस तरह यह भी और त्योहारोंकी तरह एक अभ्यस्त त्योहार बनता जाता है। पर क्या इसी लिए हम इस त्योहारकी पुनः प्रतिष्ठा करना चाहते हैं? नहीं, जब तक प्रत्येक जैनके हृदयमें शास्त्रकी ज्ञानकी प्रतिष्ठा और महत्त्व स्थापित न हो जाय, प्राचीन शास्त्रोंकी रक्षा करना उनके ज्ञानका विस्तार करना, उनके लिए बड़े बड़े भंडार स्थापित करना, सुलभ वाचनालय खोलना, आदि पवित्र का-

योको जैनसमाजका प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य न समझने लगे तब तक इस पर्वकी सफलता नहीं कही जा सकती। इन सब बातों-के लिए इस पर्व पर प्रत्येक स्थानमें आन्दोलन होना चाहिए। प्रत्येक ग्राम, पंचायत या मन्दिरमें श्रुतपंचमीपर्वका उत्सव होना चाहिए और उस समय शास्त्रदान और शास्त्रसंग्रहकी कुछ न कुछ व्यवस्था अवश्य होना चाहिए। चाहिए तो यह कि प्रत्येक व्यक्ति ये पुण्यकार्य करें; परन्तु यदि न होसके तो कमसे कम पंचायतीकी ओरसे एक दो नये ग्रन्थ प्रतिवर्ष लिखाकर मँगाये जायँ और भंडारमें संग्रह, किये जावें। यदि शक्ति कम हो तो छपे ग्रन्थ ही मँगाये जावें। कुछ ग्रन्थ विद्यार्थियोंको या स्वाध्यायप्रेमियोंको बाँटे जावें और कुछ रुपया सनातन जैनग्रन्थमाला, माणिकचन्द्र जैनग्रन्थमाला सिद्धान्तभवन जैसी संस्थाओंको दिया जावे। जो लोग समर्थ हैं, उन्हें किमी एक ग्रन्थके जीर्णोद्धार करानेका—छपाकर अर्धमूल्यमें या मुफ्तमें बाँटनेका भी इस पवित्र दिनको निश्चय करना चाहिए। यदि इस तरह पचास पंचायतियाँ ही विचार लें तो प्रतिवर्ष ५० ग्रन्थोंका उद्धार हो जाय। हमें इस अवसर पर प्रत्येक हृदयमें यह बात ठँसार देनी चाहिए कि जैनधर्मकी रक्षा उसके ग्रन्थोंकी रक्षा—उसके प्रकाश और प्रचारसे ही होगी।

९ माणिकचन्द्रजैनग्रन्थमाला ।

ग्रन्थमालाका कार्य शुरू होगया है। पहला ग्रन्थ सागार धर्मामृत सटीक छप रहा है, दूसरा हस्तिमल्लकृत विक्रान्तकौरवीय नाटक प्रेसमें हाल ही दिया गया है और तीसरे वादिराजसूरिकृत पार्श्व-

नाथकाव्यकी प्रेस कापी तैयार कराई जा रही है। प्रूफसंशोधक-का प्रबन्ध न होनेसे और प्रेसकी शिथिलतासे पहले ग्रन्थके तैयार होनेमें आशासे अधिक विलम्ब होगया; परन्तु अब ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि तीनों ग्रन्थ जल्द तैयार हो जायँ। पाठकोंको यह तो मालूम ही है कि यह माला केवल ग्रन्थोद्धार और ग्रन्थ प्रचारकी दृष्टिसे जारी की गई है और इसीलिए इसके तमाम ग्रन्थ लागतके मूल्य पर बेचे जावेंगे। इसमें इसके संस्थापकों या संचालकोंका निजी स्वार्थ कुछ भी नहीं है। इसलिए हम आशा करते हैं कि श्रुतपंचमीके अवसर पर हमारे पाठक ग्रन्थमालाको अवश्य स्मरण कर लेंगे और इसके लिए कुछ न कुछ सहायता भेजेंगे। सागारधर्मामृतकी एक हजार प्रतियाँ छपाई जा रही हैं। पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि अमरोहा मुरादाबाद निवासी बाबू बिहारीलालजीके पुत्रने इसकी २९० प्रतियाँ मुफ्तमें वितरण करनेके लिए खरीद ली हैं जो तैयार होते ही भेज दी जावेंगी। बाबूसाहबको और उनके सुपुत्रको हम हृदयसे धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि अन्यान्य धर्मात्मा भाई भी इसी तरह ग्रन्थमालाको सहायता पहुँचावेंगे। २९० प्रतियाँ खरीदनेवाले सज्जन यदि चाहें तो उनका फोटो ग्रन्थके साथ लगवा दिया जायगा। इन तीनों ग्रन्थोंमें तीन तीनसौ रुपयोंसे अधिक खर्च न पड़ेगा। एक ग्रन्थकी २९० प्रतियाँ वितरण करनेके लिए ले लेना, जिसमें लगभग ७९) खर्च होंगे, एक साधारण स्थितिके गृहस्थको भी भारी न होगा।

१० अवे० का० हेरल्डका साहित्य और इतिहासका अंक ।

जबसे इस मासिक पत्रके सम्पादक श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्द्र-जी देसाई बी. ए. एल एल. बी. हुए हैं तबसे इसकी बहुत उन्नति हो गई है। अब यह एक पढ़ने योग्य पत्र बन गया है। देसाई महाशयको इतिहासका बड़ा शौक है। अपने जीविकाके कार्यसे उन्हें जितना समय मिलता है उसको वे प्रायः इतिहासके अध्ययनमें ही व्यतीत करते हैं। जहाँ तक हम जानते हैं जैनसमाजमें वे ही एक युवक हैं जो जैनइतिहासकी छानबीनमें निरन्तर लगे रहते हैं। इस विषयमें वे हमारे दूसरे ग्रेज्युएट सज्जनोंके लिए अनुकरणीय हैं। गतवर्ष उन्होंने अपने पत्रके दो बड़े बड़े अंक प्रकाशित किये थे जिनमें केवल 'महावीर स्वामी' के सम्बन्धके ही तमाम लेख थे। उक्त अंकोंकी चर्चा जैनहितैषीमें यथासमय हो चुकी है। अब वे 'जैनइतिहास और साहित्य' का एक खास अंक निकालना चाहते हैं और उसके लिए तैयारी कर रहे हैं। उन्होंने एक विज्ञापन प्रकाशित किया है और जैनसमाजके तीनों संप्रदायके लेखकोंसे इतिहास और साहित्यसम्बन्धी लेख भेजनेकी प्रार्थना की है। इस विज्ञापनके साथ—जिन जिन विषयोंपर वे लेख चाहते हैं उनकी एक सूची है। इतिहासकी सूचीमें २८ और साहित्यमें ३० विषय उन्होंने चुने हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिए हम उनमेंसे कुछ महत्वके विषयोंका यहाँ उल्लेख किये देते हैं:—इतिहास—१ गणधरोंका इतिहास

२ सुधर्मास्वामीसे लेकर अब तककी पट्टावलियाँ, ३ समस्त गच्छोंके नाम और उनका इतिहास, ४ जैनप्रभावक-कवि-मंत्री और स्त्रियोंका इतिहास, ५ जैनतीर्थोंका इतिहास, ६ चन्द्रगुप्त, अशोक, कुणिक, संप्रति, आदि मौर्यवंशी राजाओंका इतिहास, ७ अकबर और जहाँगीरके फरमान, ८ वल्लभसम्प्रदायका जैनों पर पड़ा हुआ प्रभाव, ९ गुजरातके जैन राजा, १० कुमारपालके समयका गुजरात, ११ गुजरातके इतिहासमें जैनोंकी सेवा, १२ अल्लाउद्दीन खिलजी आदि मुसलमान और जैनमंदिर, मन्दिरोंकी बर्ना हुई मजिदें; शिलालेख और जैनशिल्पकलाके इस विषयमें विश्वस्तप्रमाण, १३ जैनोंके सब सम्प्रदाय और उनकी मान्यताओंकी भिन्नता, १४ प्राचीन जैन व्यापारी और उनकी व्यापार पद्धति, १५ भोजकोंकी उत्पत्ति, १६ महावीर स्वामीकी निर्वाणतिथिका निर्णय, १७ जैनदर्शनकी प्राचीनता, १८ जैन इतिहासके साधन । साहित्य १ जैनेतर साहित्यमें जैनधर्मका या जैनोंका उल्लेख, २ जैनसंस्कृत औ-प्राकृत साहित्य, ३ प्राकृतभाषाका उद्धार कैसे हो ? ४ जैनन्यायर साहित्य, धर्मसाहित्य, कथासाहित्य, नाटकसाहित्य, ५ बंगाली, मराठी, कानडी, आदि देशभाषाओंमें जैनसाहित्य, ६ अपभ्रंश-भाषा, ७ जैन पुस्तकालय, ८ प्राकृत साहित्यका संस्कृतमें अनुवाद, जैनदर्शनकी अन्यदर्शनोंसे तुलना । आदि । आशा है कि हमारे दिगम्बरी विद्वान् भी इनमेंसे किसी विषयमें कुछ लिखनेकी कृपा करेंगे । सम्पादक महाशय हिन्दी लेखोंके प्रकाशित करनेका भी आश्वासन देते हैं ।

११ जैनहितेपीका प्रस्तुत अंक ।

हमारी यह बहुत दिनोंसे इच्छा हो रही है कि जैनहितेपीका भी वर्ष भरमें कमसे कम एक खास अंक निकाला जाय और उसमें किसी एक ही विषयकी खास तौरसे चर्चा हो; परन्तु इस कार्यकी गुरुताका और परिश्रमका विचार करके, साथ ही लोगोंकी अभिरुचिकाभी खयाल करके अपनी उक्त इच्छाको बारबार रोकलेना पड़ता है। किन्तु अबकी बार यह इच्छा इतनी प्रबल हो गई कि इसे हम किसी तरह न रोक सके और समयके न रहने पर—पहलेसे सूचना आदि दिये विना ही हमने खास अंकके ढाँचेका यह अंक तैयार कर डाला यद्यपि यह अन्यान्य पत्रोंके समान विशालकाय नहीं हैं और इसमें चित्रादि भी नहीं हैं तो भी जिस तरहके खास अंक हम निकालना चाहते हैं उनका यह छोटासा नमूनेका रूप है। एक दो लेखोंको छोड़कर इसके प्रायः सब ही लेख इतिहासमे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। हमें डर है कि ऐसे लूखे विषयकी चर्चाको पाठक पसन्द करेंगे या नहीं, तो भी यह आशा है कि जो विचारशील सज्जन हैं वे इन लेखोंको और नहीं तो हमारी प्रार्थनासे—आग्रहसे ही एक बार आद्यन्त पढ़ जानेकी कृपा करेंगे और यदि उन्होंने ऐसा किया तो हम अपने परिश्रमको सफल समझेंगे हमारा यह प्रयत्न यदि पाठकोंको रुचिकर हुआ तो हम आगामी वर्षकी श्रुतपञ्चमीको इससे लगभग दूना बड़ा अंक तैयार करनेका प्रयत्न करेंगे।

यह अंक समग्रसे भी कुछ पहले प्रकाशित होता है; इसका कारण यह है कि हम कारणवश अपने घर जा रहे हैं और वहाँ हमें एक महीनेसे अधिक लग जायगा। यदि कोई विघ्न न आया तो आगामी अंक आषाढके अन्त तक अवश्य निकल जायगा।

चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटीकी अनोखी पुस्तकें ।

चित्रमयजगतः—यह अपने ढंगका अद्वितीय सचित्र मासिकपत्र है। “इन्वे-स्ट्रेटेड लंडन न्यूज ” के ढंग पर बड़े साइजमें निकलता है। एक एक पृष्ठमें कई कई चित्र होते हैं। चित्रोंके अनुसार लेख भी विविध विषयके रहते हैं। साल भरकी १२ कापियोंको एकमें बंधा लेनेसे कोई ५००, ५०० चित्रोंका मनोहर अलबम बन जाता है। रंगीन चित्र भी इसमें रहते हैं। आर्टपेपरके संस्करणका वार्षिक मूल्य ५॥) डॉ० व्य० सहित और एक संख्याका मूल्य ॥) आना है। साधारण कागजका वा० मू० ३॥) और एक संख्याका ॥) है।

राजा रविधर्माके प्रसिद्ध चित्र—राजा साहबके चित्र संसारमें नाम पा चुके हैं। उन्हीं चित्रोंको अब हमने सबके सुभीतेके लिये आर्ट पेपरपर पुस्तकाकर प्रकाशित कर दिया है। इस पुस्तकमें ८८ चित्र मय विवरणके हैं। राजा साहबका सचित्र चरित्र भी है। टाइटल पेज एक प्रसिद्ध रंगीन चित्रसे सुशोभित है। मूल्य है सिर्फ १) ६०।

चित्रमय जापान—घर बैठे जापानकी सैर। इस पुस्तकमें जापानके सृष्टि-सौंदर्य, रीतिरिवाज, खानपान, मृत्यु, गायनवादन, व्ययसाय, धर्मविषयक और राजकीय, इत्यादि विषयोंके ८४ चित्र, संक्षिप्त विवरण सहित हैं। पुस्तक अक्विल नम्बरके आर्ट पेपर पर छपी है। मूल्य एक रुपया।

सचित्र अक्षरबोध—छोटे २ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेमें यह पुस्तक बहुत नाम पा चुकी है। अक्षरोंके साथ साथ प्रत्येक अक्षरको बतानेवाली, उसी अक्षरके आदिवाली वस्तुका रंगीन चित्र भी दिया है। पुस्तकका आकार बड़ा है। जिससे चित्र और अक्षर सब सुशोभित देख पड़ते हैं। मूल्य छह आना।

वर्णमालाके रंगीन ताश—ताशोंके खेलके साथ साथ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेके लिये हमने ताश निकाले हैं। सब ताशोंमें अक्षरोंके साथ रंगीन चित्र और खेलनेके चिन्ह भी हैं। अवश्य देखिये। फी सेट चार आने।

सचित्र अक्षरलिपि—यह पुस्तक भी उपर्युक्त “ सचित्र अक्षरबोध ” के ढंगकी है। इसमें बराखड़ी और छोटे छोटे शब्द भी दिये हैं। वस्तुचित्र सब रंगीन हैं। आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है। इसीसे इसका मूल्य दो आने है।

सस्ते रंगीन चित्र—श्रद्धाचित्र, श्रीगणपति, रामपंचायतन, भरतभेट हनुमान, शिवपंचायतन, सरस्वती, लक्ष्मी, मुरलीधर, विष्णु, लक्ष्मी, गोपीचन्द, अहिल्या, शकुन्तला, मेनका, तिलोत्तमा, रामवनवास, गजेंद्रमोक्ष, हरिहरभेट, मार्कण्डेय, रम्भा, मानिनी, रामधनुर्विद्याशिक्षण, अहिल्योद्धार, विश्वामित्र मेनका, गायत्री, मनोरमा, मालती, दमयन्ती और हंस, शेषशायी, दमयन्ती इत्यादिके सुन्दर रंगीन चित्र । आकार ७×५, मूल्य प्रति चित्र एक पैसा ।

श्री सयाजीराव गायकवाड बड़ोदा, महाराज पंचम जार्ज और महारानी मेरी, कृष्णशिष्टाई, स्वर्गीय महाराज सप्तम एडवर्डके रंगीन चित्र, आकार ८×१० मूल्य प्रति संख्या एक आना ।

लिथोके बढ़ियाँ रंगीन चित्र—गायत्री, प्रातःसन्ध्या, मध्याह्न सन्ध्या, सायंसन्ध्या प्रत्येक चित्र ।) और चारों मिलकर ॥) नानक पंथके दस गुरु, स्वामी दयानन्द सरस्वती, शिवपंचायतन, रामपंचायतन महाराज जार्ज, महारानी मेरी, । आकार १६×२० मूल्य प्रति चित्र ।) आने ।

अन्य सामान्य—इसके सिवाय सचित्र कार्ड, रंगीन और सादे, स्वदेशी बटन, स्वदेशी दियासलाई, स्वदेशी चाकू, ऐतिहासिक रंगीन खेलनेके ताश, आधुनिक देशभक्त, ऐतिहासिक राजा महाराजा, बादशाह, सरदार, अंग्रेजी राजकर्ता, गवर्नर जनरल इत्यादिके सादे चित्र उचित और रस्ते मूल्य पर मिलते हैं । स्कूलोंमें किंकरगार्डन रीतिसे शिक्षा देनेके लिये जानवरों के चित्र सब प्रकारके रंगीन नकशे, ड्राईंगका सामान, भी योग्य मूल्यपर मिलता है इस पतेपर पत्रव्यवहार कीजिये ।

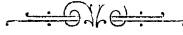
मैनेजर चित्रशाला प्रेस, पूना सिटी ।

जैनपञ्चांग ।

ज्योतिषरत्न पं० जीयालालजी जैनीका प्रासिद्ध पञ्चांग जो सारे देशमें प्रचलित है हमने बिक्रीके लिए मँगाया है । जैनी और अजैनी सबके कामका है । जैनतिथि जुदी बतलाई गई है । जल्द मँगाइए । मूल्य डेढ़ आना ।

जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय गिरगाँव, बम्बई ।

—:राष्ट्रीय ग्रन्थ:—



१ सरल-गीता । इस पुस्तकको पढ़कर अपना और अपने देशका कल्याण कीजिये । यह श्रीमद्भगवद्गीताका सरल-हिन्दी अनुवाद है । इसमें महाभारतका संक्षिप्त वृत्तान्त, मूल श्लोक, अनुवाद और उपसंहार ये चार मुख्य भाग हैं । सरस्वतीके सुविद्वान संपादक लिखते हैं कि यह ' पुस्तक दिव्य है । ' मूल्य ॥१॥

जयन्त । शेक्सपियरका इंग्लैंडमें इतना सम्मान है कि वहाँके साहित्यप्रेमी अपना सर्वस्व उसके ग्रन्थोंपर न्योछावर करनेके लिए तैयार होते हैं । उर्षी शेक्सपियरके सर्वोत्तम ' हैम्लैट ' नाटकका यह बड़ा ही सुन्दर अनुवाद है । मूल्य ॥२॥; सादी जिल्द ॥१॥

३ धर्मवीर गान्धी । इस पुस्तकको पढ़कर एक धार महात्मा गान्धीके दर्शन कीजिये, उनके जीवनकी दिव्य का अनुभव कीजिये और द० अफ्रिकाका मानचित्र देखते हुए अपने भाइयोंके पराक्रम जानिये । यह अपूर्व पुस्तक है । मूल्य ॥१॥

४ महाराष्ट्र रहस्य । महाराष्ट्र जातिने कैसे सारे भारतपर हिन्दू साम्राज्य स्थापित कर संसारको कंपा दिया इसका न्याय और वेद न्नसंगत ऐतिहासिक विवेचन इस पुस्तकमें है । परन्तु भाषा कुछ कठिन है । मूल्य -॥१॥

५ सामान्य-नीतिकाव्य । सामाजिक रीतिनीतिपर यह एक अनूठा काव्य ग्रन्थ है । सब सामयिक पत्रोंने इसकी प्रशंसा की है । मूल्य ॥१॥

इन पुस्तकोंके अतिरिक्त हम हिन्दीकी चुनी हुई उत्तम पुस्तकों भी अपने यहाँ विक्रयार्थ रखते हैं ।

नवनीत-मासिक पत्र । राष्ट्रीय विचार । वा० मूल्य २॥

यह अपने ढंगका निराला मासिक पत्र है । हिन्दी देश, जाति और धर्म इस पत्रके उपास्य देव हैं । अस्मिक उन्नति इसका ध्येय है । इतना परिचय फ्यास न हो तो १-७ के टिकट भेजकर एक नमूनेकी कापी मंगा लीजिये ।

ग्रन्थप्रकाशक समिति, नवनीत पुस्तकालय.

पत्थरगली, काशी.

यश और पुण्यप्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले दानवीर महाशयो !

यहि आप थोडेसे खर्चमें सैकड़ों ग्रंथोंके दान करनेका यशःपुण्य लूटना चाहते हैं तो आइये और इस सूचनाको ध्यान देकर बाँचिये । कि—

भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनीसंस्था काशीके स्थापन करनेका एक मात्र उद्देश्य यह है कि—जैनियोंके सिवाय देश विदेशोंके समस्त अजैन विद्वानोंमें जैनधर्मसंबंधी उत्तमोत्तम प्रभावशाली संस्कृत, प्राकृत, हिंदी तथा बंगला, अंगरेजी भाषामें विविधप्रकारके ग्रंथ छपा २ कर प्रचार करना अर्थात् मुफ्त देना वा लागतके भावसे देते रहना । जिसकी सिद्धिकेलिये इस संस्थाने प्रथमही तो गवर्नमेंटकी कलकत्ता संस्कृतयूनिवर्सिटीके कोर्समें जैनमतके न्याय व्याकरणादि ग्रंथ भरती कराकर **सनातनजैनग्रंथमाला**के द्वारा प्रकाशित करना प्रारंभ किया था । सो धाराशिवनिवासी श्रीयुत श्रेष्ठिवर्य **गांधीनेमिचंद बहालचंदजी**, वकील आदिकी द्रव्यसहायतासे आगे लिखे ९ ग्रंथ छपाये हैं और अन्यमती विद्वानोंके पास व पुस्तकालयोंमें विनामूल्य सवासवासौ प्रति बराबर भेजते रहे हैं । फिर भी दानी महाशयोंसे सहायता मिलेगी तो श्लोकवातिक, पद्मपुराण, न्यायविनिश्चयालंकारादि संस्कृतके महान् ग्रंथ छपा २ कर सर्वसाधारण विद्वानोंमें वितरण किये जायगे । इसके सिवाय अन्य सर्व साधारणमें जैनधर्मके सिद्धांतोंका प्रचार करनेकेलिये हिंदी, बंगला, अंगरेजी आदि भाषाओंमें छोटे बड़े सब ही प्रकारके जैनग्रंथ **चुन्नीलालजैनग्रंथमालामें** छपा २ कर प्रचार करनेका विचार किया था परंतु द्रव्यसहायता न मिलनेके कारण यह कार्य गत दो वर्षोंमें कुछ भी नहीं कर पाये । इसकारण इसवर्ष यदि आप लोग थोड़ी २ द्रव्यसहायता दें तो अब इन तीनों भाषाओंमें अनेक ग्रंथ छपा २ कर सर्व देशोंके अन्यमती विद्वानोंमें तथा सर्वसाधारणमें विनामूल्य वितरण करनेका काम बड़े जोरशोरसे चलाया जावे ।

यह तो आपको रिपोर्ट द्वारा विदित ही होगया होगा कि यह संस्था किसी खास मनुष्यकी नहीं है और न कोई इससे अपना पारमार्थिक प्रयोजनके सिवाय सांसारिक प्रयोजन ही साधन करता है । जिसप्रकार आप लोग धनसे सहायता करके पुण्योपार्जन करना चाहते हैं, उसीप्रकार इस संस्थाके कार्यकर्त्ता भी यथाशक्ति अपना तन और मन लगाकर परिश्रम करते रहते हैं । इसी कारण अखबारोंद्वारा व विज्ञापनोंद्वारा बारंबार प्रार्थना की जाती है कि और २ धार्मिक

संस्थाओंकी तरह इस धार्मिक संस्थाकी भी सहायता हमेशा करते रहा करें । आप लोग अन्य अन्य धर्मकार्योंमें सैकड़ों हजारों रुपया दान करते हैं परंतु इस कार्यमें दान करनेसे जितना फल होता है वा पुण्य यशकी प्राप्ति हो सकती है अन्य किसी भी कार्यमें नहीं होती होगी । इसलिये हमने एक बहुत ही सरल उपाय निकाला है जिसके द्वारा समर्थ असमर्थ सब कोई महाशय सैकड़ों हजारों शाल्छोंका दान कर सकते हैं—

वह सरल उपाय यह है कि—

आप अपनी सामर्थ्यानुसार ५०) १००) ५००) या १०००) जितनी इच्छा हो एक रकम इस संस्थामें भेज दीजिये । हम आपके नामसे संस्थाकी बहीमें एक दान खाता लगाकर जमा करलेंगे । उस रकमसे आपके वा आपके पिता आदिका जिनका नाम देंगे उनके स्मरणार्थ नामदि सहित किसीभी एक ग्रंथकी १००० प्रति छपावेंगे । उनमेंसे ४०० या ५०० प्रति जैनियोंमें बेचकर लागतकी रकम उठाकर उसी खातेमें जमा करके फिर कोई भी दूसरा ग्रंथ छपाना शुरू कर देंगे और शेष रही ६०० या ५०० प्रतियोंमेंसे आधी तो आपके पास दान करनेके लिये भेज देंगे और आधी हम अपने जैन अजैन ग्राहकोंको विनी मूल्य वितरण कर देंगे । इसीप्रकार दूसरे ग्रंथकी भी ४००-५०० प्रति बेचकर मूल लागतकी रकम हस्तगत करके उस ग्रंथकी भी शेष प्रतियोंमेंसे आधी प्रतियाँ आपको दान करनेके लिये भेज देंगे और आधी हम दान कर देंगे । इसी प्रकार हमेशाह वर्षमें एक दो या तीन बार आपकी रकमसे ग्रंथ छपा २ कर विक्रय करके मूल रकम हाथमें रखकर सैकड़ों हजारों ग्रंथोंका विना टका पैसेके दान होता रहेगा । अन्यमती विद्वानों और सर्वसाधारण भाइयोंमें जैनधर्मके ग्रंथोंका प्रचार होनेसे कितना लाभ होगा सो आप ही विचार लें और आपके ध्यानमें आ जावे तो शीघ्र ही कोई एक रकम भेजकर आज्ञा दें जो हम ग्रंथ छपाकर आपका यह शास्त्रदानका कार्य शुरू कर दें । आपकी रकमका छपाई विक्री वगैरह खर्चका पाई पाईका हिसाब प्रतिवर्ष आपके पास भेज दिया जायगा और वार्षिक रिपोर्टमें भी छपा दिया जायगा । यदि यह उपाय आपकी समझमें नहीं आया हो तो फिरसे एक बार इसे बांचकर समझ लीजिये ।

इस विषयमें पत्रव्यवहार करनेका पता—

पन्नालाल बाकलीवाल

व्यवस्थापक—भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशनीसंस्था

ठि० मंदागिन जैनमंदिर, पो० बनारस सिटी ।

सनातन जैनग्रंथमालामें छपे हुये

प्राचीन सटीक संस्कृत प्राकृत ग्रंथ ।

दो वर्ष हुये बनारसमें एक सनातनजैनग्रंथमाला नामकी प्राचीन ग्रंथमाला निकलती है जिसमें नीचे लिखे प्रभावशाली ग्रंथ संस्कृतज्ञ व धर्मपिपासु जैन अजैन समस्त विद्वानोंके हितार्थ छपे हैं । कोई भी विद्वान् क्यों न हो इन ग्रंथोंको थोड़ासा बांचते ही इनकी महत्ताको नमस्कार करेगा । इन ग्रंथोंका सर्वसाधारणमें प्रचार करनेसे जैनधर्मकी बड़ी भारी प्रभावना होगी । इसलिये प्रत्येक जैनमंदिर जैनपाठशाला वा जैनलाइब्रेरी वा बाचनालयोंमें एक एक सीट अवश्य ही मगाकर संग्रहीत करना चाहिये और जो कोई भी संस्कृतज्ञ विद्वान् हो, वा आवे उनको दान करें वा देकर पढ़नेको कहेंगे तो बड़ा भारी लाभ होगा । दान करनेवालोंकेलिये बहुत ही किफायत की जाती है अर्थात् २७०) रुपयेके १० सीट ग्रंथ सिर्फ १००) रुपयोंमें भेज देते हैं । एक सीट ग्रंथोंका मूल्य २६॥८) होते हैं सो सबकेसब (एकसीट) लेनेसे हम केवल १४) रुपयोंमें भेज देते हैं परंतु फुटकर (छूटा) लेनेवालोंसे नीचे लिखी न्योछावर ली जाती है ।

१-२. आत्मपरीक्षा सटीक और पत्रपरीक्षा—ये दोनों ग्रंथ स्याद्वाद-विद्यापति सकलतार्किकचक्रचूडामणि श्रीविद्यानंदस्वामीके बनाये हुये हैं । आत्मपरीक्षापर टीका भी स्वोपज्ञ सविस्तर है । इसमें समस्त मतोंका निराकरण करके सत्यार्थ आत्मकी सिद्धि की है । यह ग्रंथ कलकत्ता गवर्नमेंटकी संस्कृत यूनिवर्सिटीकी जैनन्याय मध्यमापरीक्षामें भरती है । मूल्य २) रुपये ।

३. समयप्राभृत (समयसार नाटक) दो टीका सहित छपा है । मूल ग्रंथ प्राकृतमें भगवत्कुंदकुंदस्वामीकृत है । इसपर जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति और अमृतचंद्रसूरी कृत आत्मख्याति टीका साथमें है । जैनसमाजमें अध्यात्म विषयका ग्रंथ इसकी बराबर और कोई नहीं है । मूल्य ५.) रु. है ।

४ । तत्त्वार्थराजवार्तिक—यह ग्रंथ उमास्वामीकृत मोक्षशास्त्र तत्त्वार्थ-सूत्रोंपर स्याद्वादविद्यापति भट्टाकलंकदेव कृत बड़ी टीका है । जैनदर्शनकी यह बड़ी प्राचीन सर्वोपयोगी टीका है । किसी २ सूत्रपर तो चालीस २ वार्तिकें हैं और प्रत्येक वार्तिकपर विस्तृत व्याख्या है । जैनदर्शनके अपूर्व सिद्धांत जानने वाले विद्वानोंके लिये यह बहुत ही उपयोगी मनन करने योग्य ग्रंथ है । मू. ९) रु.

५. जैनैद्रप्रक्रिया—पूज्यपाद गुणनंदिकृत—यह प्रसिद्ध अष्टव्याकरणोंमेंसे जगत्प्रसिद्ध जैनैद्रव्याकरणसमुद्रमें प्रवेश करनेके लिये नौकाकी समान बहुत ही

सरल प्रक्रिया टीका है। संस्कृत पढनेवाले विद्यार्थियोंके लिये बहुत ही उपयोगी है। इसी लिये यह ग्रंथ भी कलकत्ता संस्कृत यूनिवर्सिटीकी प्रथमा परीक्षामें भरती होगया है। न्योछावर १॥) रुपया।

६. शब्दार्णवचंद्रिका—सोमदेवकृत यह भी उक्त जैनैन्द्रव्याकरणकी शब्दार्णवचंद्रिका नामकी बहुत ही सुगम टीका है। यह भी कलकत्ता संस्कृत परीक्षाकी व्याकरण मध्यमा (पंडित) परीक्षामें भरती है। मूल्य ५)

७—८. आप्तमीमांसा सटीक समाध्य और प्रमाणपरीक्षा—ये दोनों ग्रंथ एक ही जिल्दमें हैं। आप्तमीमांसा भगवत्समंतभद्राचार्यकृत ८४००० श्लोकमय गंधहस्तमहाभाष्यके मंगलाचरणस्वरूप ११५ कारिका हैं। इसका नाम देवागमन्याय व देवागमस्तोत्र भी है। इस पर एक तो वसुनंद सिद्धांतचक्रवर्ति कृत टीका है दूसरा अकलंकदेव कृत अष्टशती नामका भाष्य है। दूसरा ग्रंथ प्रमाणपरीक्षा—विद्यानंदस्वामी कृत प्रमाणनिर्णयविषय बहुत ही उपयोगी ग्रंथ है। यह ग्रंथ भी कलकत्ताकी जैनन्याय मध्यमा परीक्षामें भरती है। मूल्य २) रु०

९. शब्दानुशासन सटीक—यह भी जगत्प्रसिद्ध अष्ट व्याकरणोंमेंसे शाकटायन व्याकरण है यक्षवर्माकृत चिंतामणि टीकासहित छपा है। इसी व्याकरणके सूत्रोंका तात्पर्य पाणिनीयमहाराजने अपने व्याकरणमें लडुःशाकटायनस्य इत्यादि सूत्रोंमें ग्रहण किया है। इसका प्रथम खंड मात्र छपा है। मूल्य २) रु० है।

१०. शाकटायनधातुपाठ—यह दूसरेका छपाया हुआ है। मूल्य १८) भाषाके ग्रंथ।

१. जिनशतक—संमतभद्रस्वामीकृत संस्कृत और भाषाटीका सहित चित्रकाव्य ॥)

२. धर्मरत्नोद्योत—चोपाईबंध श्रावकाचार आदि अनेक विषय भूषित १)

३. धर्मप्रश्नोत्तर—(प्रश्नोत्तरश्रावकाचार) यह भी अनेक विषयोंकी चर्चा सिखानेवाला बहुतही सरल प्रश्नोत्तररूप बड़ा उपयोगी ग्रंथ है। मूल्य २) रु०।

४. महावीरस्वामीका चरित्र—एक आना १०० लेनेवालोंको ३)सैकड़ा।

मिलनेका पता—पन्नालाल बाकलीवाल

व्यवस्थापक—भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था

ठि. मैदागिन जैनमंदिर—पोष्ट बनारस सिटी।



आवश्यकीय प्रार्थना ।

महाशयो ! यह बात निर्विवाद सिद्ध है-इसके कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि संसारमें वही धर्म जीवित रहसकता है और उसीकी गणना जीवित धर्मोंमें की जा सकती है कि जिसका प्राचीन साहित्य सुरक्षित विद्यमान हो, जिसके इतिहासादि आर्षग्रंथोंका यथेष्ट उद्धार होता जाता हो, जिसका शास्त्रभंडार नित्यशः बढ़ता जा रहा हो और जिसके तर्क, छंद, व्याकरण ज्योतिष विज्ञान इतिहासादि साहित्यके समस्त अंगोंकी पुष्टि होती जाती हो । वह धर्म इस उन्नतिशील प्रकाशमयी २० वीं शताब्दीमें कदापि उन्नति नहीं कर सकता और उसके सिद्धांत कदापि विश्वव्यापी नहीं हो सकते जिसका कि साहित्यभंडार अंधकूपमें पड़ा हुआ हो, प्राचीन महत्त्वशाली ग्रंथ दीमकोंके आहार बन रहे हों । इसी कारण ही सब समाजें हजारों लाखों रुपये खर्च करके अपने २ साहित्यकी रक्षा वृद्धिकर रहे हैं । हमने भी इसी मार्गको उत्तम समझकर सबसे पिछड़े हुये अपने पवित्र जैनधर्मकी स्थिति कायम रखनेको इच्छासे तथा सरकारी संस्कृत गुनिवर्सिटियोंमें जैनन्यायव्याकरणादि ग्रंथ भरती कराने वा सर्वत्र प्रचार करनेके लिये एक **भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशनीसंस्था** खोलकर प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंके प्रकाशनार्थ तो **सनातनजैनग्रंथमाला** और हिंदी बंगला अंगरेजीभाषामें नये ढंगके इतिहासादि ग्रंथ वा ट्रेक्टें प्रकाश करनेकेलिये एक **चुन्नीलालजैनग्रंथमाला** प्रकाशित करना प्रारंभ किया था, परंतु पूरी २ द्रव्यसहायता न मिलनेके कारण कलकत्ता संस्कृतयूनिवर्सिटीमें भरती हुए जैनन्याय जैनव्याकरण ग्रंथोंका पठनक्रम (कोर्स) अभी तक छपाकर पूर्ण नहीं कर सके, लाचार राजवास्तिक, जैनैंद्र शाकटायनादि व्याकरण अधूरे ही रखकर छपाना बंद करना पड़ा है । परंतु अब कलकत्ता आदिके अनेक सज्जन महाशयोंकी प्रेरणा व सम्मतिसे उत्साहित होकर पचास २ रुपयोंके ६० और दश दश रुपयोंके २०० इस प्रकार पांच हजार रुपयोंके शेरर बेचकर उसी रकमसे अत्यंत शुद्धतासे मनोहर छपाई करनेके लिये एक छोटासा जैनप्रेस खोलकर उसके द्वारा दोनों ग्रंथमालायें नये उत्साहसे बराबर निकालते रहनेका प्रबंध किया गया है । अतएव समस्त सज्जन विद्वज्जन महाशयोंसे प्रार्थना है कि नीचे लिखे नियम वांचकर आप स्वयं शेरर (हिस्से) खरीदें तथा अन्यान्य महाशयोंको खरीददार बनाकर शेरर भरनेका फारम (जो कि इसके साथ है) लिखवाकर शीघ्रही हमारे पास भेजें ।

विलंब करनेसे अवश्य ही पछताना पड़ेगा। सब शेअर भरतेही प्रेस टाइप मंगाकर कांशी या कलकत्तेमें कार्य प्रारंभ कर दिया जायगा।

नियमावली ।

१। जो महाशय पचास रुपयोंका एक शेअर (हिस्सा) लेंगे उनको **सनातनजैनग्रंथमालामें** छपनेवाले समस्त ग्रंथोंकी (अब इसमें भाषाटीकासहितभी ग्रंथ छपेंगे) तथा **चुन्नीलालजैनग्रंथमालामें** हिंदी बंगला अंगरेजीमें छपनेवाले किसी भी एकभाषा के समस्त ग्रंथोंकी एक एक प्रति विनामूल्य बराबर भेजते रहेंगे। यदि कोई महाशय ग्रंथमाला न लेना चाहें तौ उनको ८) रुपयें सैंकड़े वार्षिकके हिसाबसे ५०) रुपयोंका वियाज ४) १० प्रतिवर्ष भेजदिया जायगा।

२। जो महाशय दश दश रुपयोंके शेअर खरीदेंगे उनको प्रत्येक शेअरके पीछे **चुन्नीलालजैनग्रंथमालामें** छपनेवाले किसी एक भाषाके समस्त ग्रंथोंकी एकएकप्रति विना मूल्य भेजते रहेंगे। यदि कोई महाशय ग्रंथ न लेना चाहें तौ उन्हें १० रुपयोंका वियाज प्रतिवर्ष ॥॥) बारह आने भेजते रहेंगे।

३। उपर्युक्त लाभके सिवाय कोई भी हिस्सेदार महाशय दान करनेकेलिये अधिक प्रतियां खरीदेंगे तो उन्हें सब ग्रंथ पौनी कीमतसे भेजिये जायंगे।

४। जो महाशय अपने शेअरके रुपयें वापिस लेना चाहें तौ तीनवर्ष बाद ले सकते हैं तथा जब चाहे तब किसी अन्य खरीददारको बेच सकते हैं।

५। इस संस्थाके समस्तकार्य संस्थाके मूलसंस्थापक, परमसंस्थापक, संरक्षक (कोषाध्यक्ष), संस्थापक, (५०० रुपयोंके शेअर खरीदनेवाले) महामंत्री, मंत्री, उपमंत्री इन सबकी बहुसम्मतिसे होते रहेंगे। अगर पचास २ रुपयोंके शेअर खरीद लेनेवालोंकी बहुत सम्मति होगी तौ एक जुदी कमेटी बनाकर उसके द्वारा काम चलाया जायगा।

महामंत्री ।

पत्र और फारम भेजनेका पत्ता—

पनालाल बाकलीवाल

महामंत्री—भारतीय जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था,

ठि० मदागिन जैनमंदिर, पो० बनारस सिटी ।

यह फारम भरकर भेजियेगा ।

श्रीयुत महामंत्री भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्थाकाशी—वाद जयजिनेंद्रके आपका प्रकाशित विज्ञापनपत्र आद्योपांत बांचकर देखा आपके प्रकाशित नियमोंके अनुसार मैं दश दश रुपयोंके* शेअर, पचास २ रुपयोंवाले* शेअरोंका खरीद-दार बनता हूं सो नीचे लिखे अनुसार मेरा नाम शेअर खरीदनेवालोंके रजिष्टरमें लिखकर सूचना दें और जब काम चलाने लायक शेअर भर जाय और कार्य प्रारंभ करना चाहें, उसवक्त सूचना देकर रुपये मंगालें। मुझे इन शेअरोंके बदले आपके प्रकाशित नियमके अनुसार ग्रंथ x वियाज भेजते रहें ।

मेरा नाम _____ उमर _____ वर्ष _____

मेरे पिताजीका नाम _____ जाति _____

ग्राम _____

पोष्ट _____ जिला _____

पत्र पहुंचनेका पूरा ठिकाना _____

* यहांपर जिसप्रकारके शेअर भरने हों उनकी संख्या लिखकर दूसरेप्रकार के शेअरका मजमून छेक दें ।

x यहांपर ग्रंथ लेना हो तो वियाज शब्द छेक दें, वियाज लेना हो तो ग्रंथ शब्द छेक दें ।

कर्नाटक छापखाना, बम्बई.

कलकत्ते के प्रसिद्ध डाक्टर बर्मन कां कठिन रोंगों की सहज दवाएं ।

गत ३० वर्ष से सारे हिन्दुस्थानमें घर घर प्रचलित हैं । विशेष विज्ञापन की कोई आवश्यकता नहीं है, केवल कई एक दवाइयों के नाम नीचे देते हैं ।

हैजा गर्मी के दस्त में

असल अर्ककपूर

मोल १) डा:मः १ से ४ शांशी

पेचिश, मरोड़, ऐठन, शूल, आंव
के दस्तमें—

क्लोरोडिन

मोल १) दर्जन ४) रुपया

कलेजे की कमजोरी मिटानेमें
और बल बढ़ाने में—

कोला टॉनिक

मोल १) डा: १) आने ।

पूरे हालकी पुस्तक विना मूल्य मिलती है दवा
सब जगह हमारे एजेन्ट और दवा फरोंशोंके पास
मिलेगी अथवा—

पेट दर्द, बादीके लक्षण मिटानेमें

अर्कपूदीना [सब्ज]

मोल १) डा:मः १) आने ।

अन्दरके अथवा बाहरी
दर्दमिटानेमें

पेन हीलर

मोल १) डा: मः १) पांच आने ।

सहज और हलका जुलाबके लि.

जुलाबकी गोली

२ गोली रातको खाकर सोवे
सबरे खुलासा दस्त होगा ।

१६ गोलियोंकी डिब्बी। १) डा:मः
१ से ८ तक १) पांच आने.

डा: एस. के. बर्मन ए. डी. ताराचंद दत्त ड्रॉट, कलकत्ता ।

हाल ही छपीहुई नई पुस्तकें ।

पिताके उपदेश—एक आदर्श पिताने अपने होनहार विद्यार्थी पुत्रको जो चिट्ठियाँ लिखी थीं उनका इसमें संग्रह है। प्रत्येक चिट्ठी उत्तमसे उत्तम उपदेशोंसे भरी हुई है। जो पिता अपने पुत्रोंको सदाचारी, परिश्रमी, मितव्ययी, विनयवान् और विद्वान् बनाना चाहते हैं उन्हें यह छोटीसी पुस्तक अवश्य मंगाना चाहिए। मूल्य सिर्फ डेढ़ आना।

अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा—यह भी विद्यार्थियोंके लिए लिखी गई है। बहुत ही अच्छी है। मूल्य २॥)

सिक्खोंका परिवर्तन—पंजाबका सिक्खधर्म एक सीधा साधा पारलौकिक धर्म होकर भी धीरे धीरे राजनीतिक योद्धाओंका धर्म कैसे बन गया इस ग्रन्थमें इसी बातका ऐतिहासिकदृष्टिसे विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। डाक्टर गोकुलचन्द्र एम. ए., पी. एच. डी., बैरिस्टर—एट लाके अँगरेजी ग्रन्थ The Transformation of Sikhism का अनुबाद है। मूल्य १॥)

स्वामी रामदासका जीवनचरित—महाराष्ट्र केसरी शिवाजी महाराजके धर्मगुरु रामदासस्वामीका पढ़ने योग्य जीवनचरित। मूल्य १।)

फिजीद्वीपमें मेरे २१ वर्ष—पं० तोतारामजी नामके एक सज्जन कुली बनाकर फिजीद्वीपमें भेज दिये गये थे। वहाँ वे २१ वर्ष तक रहे। उससमय उन्हें और दूसरे भारतवासियोंको जो असह्य दुःख दिये गये थे उनका इस पुस्तकमें रोमांचकारी वर्णन है। मूल्य १-)

स्वामी रामतीर्थके उपदेश—पहलाभाग। मूल्य १।)

पद्यपुष्पांजलि—हिन्दीके प्रसिद्ध कवि पण्डित लोचनप्रसाद शर्माकी लगभग ४० कविताओंका संग्रह। कवितायें खड़ी बोलीकी हैं। देशभक्ति, जातिप्रेम, आदिके भावोंसे भरीहुई हैं। मूल्य सिर्फ छह आना।

जर्मनीके विधाता—अर्थात् केसरके साथी—जिन लोगोंके प्रयत्न और उद्योगसे जर्मनीने वर्तमान शक्ति प्राप्त की है उन २४ पुरुषोंका संक्षिप्त चरित इस पुस्तकमें संगृहीत है। वर्तमान युद्धकी गति समझनेके लिए यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १।)

मैनेजर, हिन्दीग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

गिरगाँव, पो० गिरगाँव नन्दई